# कल्प चिकित्सा

सत्य भक्त—

युग-निर्माण-योजना, मथुरा

www.44Books.com

# कल्प-चिकित्सा

( जीवन-रक्षा की भारतीय वैज्ञानिक-प्रणाली )

सम्पादक—
श्री सत्यभक्त

३५

प्रकाशक—
युग निर्माण योजना
मथुरा ।

तृतीय बार ) १९७३ मूल्य २ ) रु०

मुद्रक—युग निर्माण प्रेस, मथुरा ।

www.44Books.com

# भूमिका

कल्प-चिकित्सा मानवीय शरीर की रक्षा और रोगों से छुटकारा पाकर आदर्श स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त करने की एक ऐसी अनुपम प्रणाली है कि उसके मुकाबले की चीज अभी तक पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञान ने खोजकर नहीं निकाली है। हम मानते हैं कि सर्जरी में और शरीर के अवयवों की काट-छांट करने में डाक्टरों ने कमाल कर दिखाया है, और उनकी अनेक औषधियाँ भी तत्काल प्रभाव दिखलाने वाली हैं। पर वास्तव में उनको 'काम चलाऊ' और 'अस्थायी कहा जा सकता है। इसके सिवाय उनमें कृत्रिमता और अस्वाभाविकता इतनी अधिक है और उनका व्यय भी इतना बढ़ा दिया गया है कि साधारण आदमी उनकी तरफ आकर्षित नहीं हो सकता।

किन्तु कल्प-चिकित्सा बिल्कुल दूसरे ढंग की चीज है। उसके सिद्धान्तानुसार किसी साधारण वनस्पति और प्राय: खाद्य पदार्थ के लगातार सेवन से ही शारीरिक स्थिति को बदला जाता है। उदाहरण के लिये आयुर्वेदीय कल्पों में सबसे अधिक प्रयोग आंवले का मिलता है, जो हमारे नित्यप्रति व्यवहार की चीज है। इसी प्रकार हरड़ या सोंठ भी घरेलू वस्तुएँ ही हैं। दूध और तक्र भी जिसे हम रोज खाते हैं, कल्प की प्रधान सामग्री माने गये हैं। इस प्रकार कल्प-चिकित्सा स्वास्थ्य-रक्षा और व्याधियों के निवारण की ऐसी सरल और स्वाभाविक विधि है जिसे साधारण व्यक्ति भी बिना विशेष आडम्बर और बड़े-बड़े यन्त्रों के कर सकने में समर्थ हो सकता है।

कल्प-चिकित्सा बड़े महत्व का और उपयोगी विषय है। इसके द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति की जितनी उत्तमता से रक्षा की जा सकती है वैसी किसी अन्य प्रणाली से संभव नहीं। प्रस्तुत पुस्तक में कल्पों के समस्त प्रयोगों की विधियाँ अनेक प्रामाणिक आयुर्वेदिक ग्रंथों और अनुभवी चिकित्सकों के सैकड़ों लेखों में खोज कर दी गई है। हमें पूरा विश्वास है कि पाठक इससे लाभ उठा कर अपने तथा अपने आत्मीयों की स्वास्थ्य रक्षा करने में समर्थ होंगे।

—सत्यभक्त

www.44Books.com

# विषय सूची

www.44Books.com

www.44Books.com

# कल्प चिकित्सा

## कल्प-चिकित्सा के सिद्धान्त

कल्प चिकित्सा प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। 'चरक संहिता' में किसी विशेष द्रव्य ( औषधि ) के प्रयोग की कल्पना को 'कल्प चिकित्सा' कहा गया है। 'सुश्रुत' में विष औषधियों की कल्पना को ,कल्प कहा गया है। इस प्रकार 'कल्प चिकित्सा' का आशय इन ग्रन्थों के अनुसार ऐसी चिकित्सा है जिसमें रोग को दूर करने अथवा स्वास्थ्य का सुधार करने के लिये एक ही द्रव्य या औषधि का प्रयोग करके अभीष्ट सिद्ध किया जाय।

अनेक वैद्यों का यह भी मत है कि चिकित्सा साधारण रोगियों पर प्रयोग करने की चीज नहीं है। जिस व्यक्ति पर इसका प्रयोग किया जाय उसमें इतनी मानसिक शक्ति, तीव्र इच्छा और शरीरिक शक्ति भी होनी चाहिये कि वह कल्प चिकित्सा के नियमों का कड़ाई के साथ पालन कर सके। इसमें यह शंका करना निरर्थक है कि ऐसा शक्तिशाली मनुष्य चिकित्सा ही क्यों करेगा। यह सच है कि युवावस्था में मनुष्य की शारीरिक सामर्थ और रोगों का प्रतिकार करने की शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी होती है कि रहन-सहन में अनेक प्रकार की गड़बड़ी होने पर भी उससे कोई खास हानि नहीं जान पड़ती। परन्तु जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है विपरीत आचरणों का प्रभाव शरीर पर दिखाई पड़ने लगता है और शीघ्र ही थकावट, निद्रा न आना, आलस्य, सिरदर्द आदि शिकायतें पैदा होने लगती हैं। ऐसी अवस्था आ जाने पर स्वास्थ्य का उसी प्रकार

www.44Books.com


सुधार करना आवश्यक होता है जैसे कई वर्ष चलने के बाद मंदी चलने वाली मशीन की पूरी सफाई कर डालना उसके सब पुर्जों को तेल वगैरह से धोकर और कस कर उसे फिर से चलने लायक बना देना। यह उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है, किस प्रकार शरीर के संचित विकारों को दूर करके उसे पुनः कार्यक्षम बना सकते हैं —इस समस्या का समाधान हमारे प्राचीन आयुर्वेद के आचार्यों ने कल्प चिकित्सा के द्वारा किया था। इस बात की सचाई तथा युक्तियुक्तता के सम्बन्ध में एक विद्वान् वैद्य का कथन ध्यान देने योग्य है—

"शरीर के भीतर जो व्यापार चलता है वह शरीर की पूर्वावस्था (बाल्यावस्था और युवावस्था) में तो लाभ दायक होता है अर्थात् उस समय वृद्धि अधिक होती है और खर्च कम। प्रौढ़ावस्था में प्रायः ऐसी स्थिति आ जाती है जबकि आमदनी और खर्च बराबर रहता है। किन्तु उत्तरावस्था (वार्धक्य) में घाटे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उस समय शारीरिक शक्ति का क्षय तो पूर्ववत् होता रहता है, पर वृद्धि रुक जाती है उस समय मनुष्य को मुनाफा के बजाय मूलधन पर निर्वाह करना पड़ता है और इसी कारण शरीर दिन पर दिन क्षय होने लगता है और निर्बलता बढ़ती चली जाती है। 'कल्प चिकित्सा' में ऐसा विधान किया गया है कि पूर्ण विश्वास करके शारीरिक क्षय को तो बिलकुल रोक दिया जाय और शक्ति प्रदायक दिव्य औषधियों अथवा गोरस आदि के प्रयोग से नवीन शक्ति का उत्पादन किया जाय। इस चिकित्सा में जो नियम, पथ्य, पंचकर्म आदि बतलाये गये हैं उनका उद्देश्य यही है कि शारीरिक शक्ति का व्यय कम से कम करके उसे नवीन शक्ति ग्रहण करने के लायक बना दिया जाय।

बड़ी उम्र में दिन पर दिन सब प्रकार की घटती शरीर में होने लगती है। इस घटती को पूर्णतः तो बन्द नहीं किया जा सकता पर उसे अनेकांश में कम किया जा सकता है। जिस समय हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ

www.44Books.com 

और कर्मेन्द्रियाँ काम करती रहती हैं उस समय यह घटती या छीजन होती ही है इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों के कार्य प्रायः मन के द्वारा संचालित होते हैं। कल्प-चिकित्सा ( विशेषतः उसकी कुटी-प्रवेश प्रणाली में ) जो कड़े नियम और पथ्य का विधान बतलाया गया है उनका उद्देश्य इस घटी या छीजन को बन्द कर देना ही है। जैसे चक्षु-इन्द्रिय ( नेत्रों ) की पूर्ण विश्रान्ति अँधेरे में पड़े रहने से होती है और इसलिये 'कल्प चिकित्सा' में तीस चालीस दिन तक अँधेरी कुटी के भीतर रहने का नियम बतलाया गया है। इसी प्रकार इस चिकित्सा की अवधि में नाक से सूँघना, मुख से बोलना, पैरों से विशेष चलना फिरना आदि सभी इन्द्रियों के कार्यों को कड़ाई के साथ नियम के भीतर लाना पड़ता है।

## मनका निग्रह आवश्यक है

इन्द्रियों का इस तरह का नियम तब तक संभव नहीं जब तक कि मन को भी पूर्ण रूप से वश में न रखा जाय। क्योंकि जैसा हम सब जानते हैं कि इन्द्रियों का राजा या संचालनकर्ता मन ही है और उसकी शक्ति सबसे अधिक है। शारीरिक दृष्टि से, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये यदि मन किसी रमणी में आसक्त है तो ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत निकम्मा ही है। उपवास करते हुये भी अगर भोजन सम्बन्धी विचार मन में बराबर बने रहें तो उस उपवास से नाम मात्र का ही लाभ होगा। इसी प्रकार जो विश्राम निद्रा से मिल सकता है वह केवल बिस्तर में आँख बन्द करके पड़े रहने से प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय मन, इधर उधर दौड़ता रहता है। इस सबका कारण यही है कि मन की शक्ति सर्वोपरि है और यदि वह शान्त नहीं रह पाता तो शक्ति का अपव्यय रुक नहीं सकता। इसलिये कल्प चिकित्सा में मनो-निग्रह की भी शर्त अनिवार्य रूप से रखी गई है। दूसरे शब्दों में जिसे कल्प-चिकित्सा कराती हो उसका 'धर्मनिष्ठ होना' भी आवश्यक है। अन्य

www.44Books.com


कोई चिकित्सा खास कर डाक्टरी चिकित्सा प्रणाली व्यक्ति के आचरण और स्वभाव पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रखती और इसलिये अधिकांश मामलों में उसका असर क्षणस्थायी होता है।

यहाँ 'धर्मनिष्ठ' होने का आशय यह नहीं कि वह व्यक्ति बहुत जप, तप, पूजा-पाठ, भजन कीर्तन करने वाला ही हो। ये सब धर्म के बाह्य लक्षण हैं और आज कल ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो इन बाहरी कार्यों को करते हुये मन से धर्म के विषय में कोरे होते हैं। इसलिये धर्मनिष्ठ का वास्तविक आशय यह है कि वह व्यक्ति सात्विक प्रकृति का और मन पर अंकुश रखने वाला होना चाहिये। जो मनुष्य स्वभाव से सात्विक नहीं है उसको कठिन अभ्यास करके और बड़े प्रयत्न से यम-नियम आदि का पालन करके मन और शरीर का संयम करना पड़ता है। इस प्रकार इन्द्रियों और मन का संयम विधि पूर्वक करने से शारीरिक शक्तियों का अपव्यय रोका जा सकता है और उससे स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव पड़ सकता है। कल्प चिकित्सा के अवसर पर इस विषय में विशेष रूप से ध्यान देने और प्रयत्न करके इसका पालन करने से औषधि और पथ्य का भी उचित प्रभाव पड़ता है।

## औषधि और आहार की विशेषता

कल्प चिकित्सा में काम लाई जाने वाली औषधियाँ मनुष्य की प्रकृति के अनुसार भिन्न बतलाई गई हैं। उनमें आमला, पलाश हरड़, पीपल, शिलाजीत, ब्राह्मी, गिलोय, त्रिफला, गोखरू, भिलावा, सुवर्ण आदि मुख्य हैं। इनमें से पित्त प्रकृति वालों के लिये आमला, पलाश आदि, कफ प्रकृति वालों के लिये हरड़ आदि, तथा वात प्रकृति के लिए निर्गुण्डी, ब्राह्मी, सुवर्ण आदि के कल्प की योजना की जाती है। साथ ही कल्प चिकित्सा के अवसर पर आहार भी जीवन-शक्ति वाले द्रव्यों का जैसे दूध, घी आदि दिया जाता है। इसका सदैव ध्यान

www.44Books.com


रखना आवश्यक है कि एक ही कल्प सबके लिए लाभकारी नहीं हो सकता। देश, ऋतु, रोग, रोगी की प्रकृति, उसकी शक्ति आदि सब बातों को निगाह में रखकर यह निर्णय करना चाहिये कि इसे किस चीज के कल्प से लाभ हो सकता है और पथ्य में किस प्रकार का आहार अनुकूल रहेगा।

शरीर को पूर्ण विश्राम देना भी कल्प चिकित्सा की सफलता के लिये अनिवार्य है। शरीर के भीतरी अवयवों को पूर्ण विश्राम मिलने से उनकी क्रियाशीलता जाग्रत हो जाती है और वे अपनी सफाई करने में लग जाते हैं। इससे भीतर बाहर का कूडा कचरा दूर होकर नवीनता और सौंदर्य की वृद्धि होती है। इसलिये कल्प चिकित्सा के अवसर पर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से पूर्ण विश्राम की व्यवस्था अवश्य कर लेनी चाहिये, तभी पूर्ण लाभ हो सकता है। अथवा जितना किया जायगा उतने ही अंश में लाभ भी होगा।

कुछ लोग यह भी प्रश्न कर सकते हैं कि कल्प चिकित्सा अब पहले की तरह विशेष लाभदायक क्यों नहीं होती? चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में तो कल्पों के द्वारा सैकड़ों वर्षों की आयु हो जाना, सब इन्द्रियों का नवीन हो जाना, वृद्ध शरीर का युवा हो जाना (जैसा च्यवन ऋषि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है) आदि अनेक चमत्कारिक बातें लिखी हैं, पर वे आजकल क्यों नहीं देखने में आतीं? यह शंका ठीक है, पर इसका कारण भी है, पहली बात तो यह है कि प्राचीन काल के लोग स्वभाव से ही प्रकृति के अनुकूल ढङ्ग से रहते थे, उनका खान पान बहुत सादा था और भोजन तथा व्यवहार के सब पदार्थ शुद्ध और ताजा होते थे। आजकल सभी बातें इससे विपरीत हो गई हैं। लोगों का रहन-सहन, खान पान, धन्धा रोजगार सबमें हानिकारक कृत्रिमता का प्रवेश हो गया है। जो लोग जन्म से ही नल का पानी पीते हैं, बिजली चक्की का पिसा सारहीन आटा खाते हैं, वेजीटेबिल घी का

www.44Books.com


सेवन करते हैं, बिजली की तेज रोशनी में पढ़ते लिखते हैं, तङ्ग गलियों और बन्द कमरों में रहते हैं, जिनको अपने धन्धे-रोजगार में भी सदैव छल कपट, झूँठ बेईमानी का आश्रय लेना पड़ता है और फिर भी प्रायः मन में अशान्ति बनी ही रहती है—ऐसे लोग प्राचीन काल के प्रकृति की गोद में ही पलने वाले लोगों की समानता कैसे कर सकते हैं? अपनी प्राकृतिक जीवन-प्रणाली के कारण वे लोग काफी सशक्त, वीर्य-वान्, पुष्ट और दीर्घायु होते थे और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर कल्प चिकित्सा के कड़े नियमों का पूर्णतः पालन कर सकते थे। उस समय औषधियाँ भी जंगलों की अधिकता से सर्वत्र ताजा और सारयुक्त मिल जाती थी। इसलिये उस समय कल्पों का जो प्रभाव होता था, वह हमको चमत्कारी ही जान पड़ता है। पर कल्प-चिकित्सा सर्वथा निस्सार अथवा हानिकारक आजकल भी नहीं कही जा सकती। जो लोग संयमपूर्वक रह सकते हैं और आहार विहार की गुलामी त्यागकर उन पर नियन्त्रण रख सकते हैं, वे अब भी इस चिकित्सा से अपने स्वास्थ्य को निर्दोष बनाकर रोगों और वृद्धावस्था की निर्बलता से छुटकारा पा सकते हैं। अतएव कल्प-चिकित्सा कराने वालों को निम्न-लिखित बातों का अभ्यास पहले से होना आवश्यक है—

(१) भूमि शयन (२) ब्रह्मचर्य (३) मौन (४) चिकित्सा पर विश्वास (५) औषधि पर निष्ठा (६) पाप कर्म परित्याग (७) इष्ट-आराधना (८) नैमित्तिक पूजा (९) आहार की पवित्रता (१०) उत्साह एवं मनोयोग (११) धैर्य (१२) देह शुद्धि।

पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी अनेक जीवों पर भाँति-भाँति के प्रयोग करके यह मालुम किया है कि आहार को कम या अधिक समय के लिये त्याग देने से शरीर क्षीण हो जाता है, फिर उसे नियमित ढंग से भोजन देकर पहले से अधिक सशक्त और दृढ़ बनाया जा सकता है। जो लोग केवल स्वास्थ्य के सुधार के लिये कल्प-चिकित्सा कराना चाहते

www.44Books.com


हैं वे भी उपवास अथवा केवल औषधि पर रहकर इस प्रकार का लाभ उठा सकते हैं। पर यह भली प्रकार जान लेना चाहिये कि यह विधि ४०-५० वर्ष की आयु के लोगों के लिये ठीक है जिनके स्वास्थ्य और शक्ति का क्षय अधिक नहीं हुआ है। अधिक आयु वाले अथवा अन्य कारणों से क्षीण हो चुके व्यक्तियों को ऐसी ही कल्प चिकित्सा करनी चाहिये जिसमें निर्बलता की अधिक वृद्धि न हो। वे लोग अपने रोग और प्रकृति के अनुसार दूध, मठा या दही अथवा किसी उपयुक्त फल का कल्प करके यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं।

# आयुर्वेदोक्त पंचकर्म

कल्प चिकित्सा के लिये औषधि का प्रयोग करने के पहले शरीर की शुद्धि एक परमावश्यक बात है। क्योंकि जब तक शरीर में मल की अधिकता रहेगी उस पर औषधियों का ठीक प्रभाव नहीं पड़ सकता। साथ ही यह भी सम्भव है कि कल्प के प्रभाव से मल उमड़कर कोई नया उपद्रव खड़ा कर दे। इसलिये आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि कल्प की औषधियाँ सेवन करने के पूर्व स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति के द्वारा शरीर में संचित दूषित मल को भली प्रकार निकाल डालना चाहिए ताकि वह औषधियों के प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ हो सके। इन पंचकर्मों में यद्यपि वमन और विरेचन को प्रधान माना गया है, पर जो मल शारीररिक अङ्गों में चिकटा या लिहसा रहता है उसे सुगमता से निकालने के लिये स्नेहन और स्वेदन द्वारा ढीला कर दिया जाता है। जैसे मैले वस्त्र को साफ करने के लिये साबुन लगाकर मैल को फुला दिया जाता है, इसी प्रकार स्नेहन तथा स्वेदन कर लेने से वमन और विरेचन में सहायता मिलती है।

चिकित्सा-पद्धति में पंचकर्म की कितनी आवश्यकता और महत्व है

www.44Books.com


यह एक वैद्य के निजी अनुभव से प्रकट होता है। वे कहते हैं कि लगभग ११ वर्ष पूर्व मैं स्वयं अनेक रोगों से आक्रान्त होकर कष्ट भुगत रहा था तब आयुर्वेद ग्रन्थों का. परिशीलन करते हुये मेरा ध्यान सहसा पंचकर्म की ओर आकर्षित हुआ। उसको भली प्रकार पढ़ने से मुझे विश्वास हो गया कि पंचकर्म द्वारा मैं अपनी गई तन्दुरुस्ती को पुनः प्राप्त कर सकूँगा। परन्तु कोई रोगी अपनी चिकित्सा आप नहीं कर सकता, वह चाहे अच्छा वैद्य ही क्यों न हो? इसके सिवाय पंचकर्म का मुझे अनुभव भी न था। इसलिये सोचा कि पंचकर्म किसी योग्य और इस कर्म के अनुभवी वैद्य से कराया जाय तो अच्छा हो। इसके लिये कलकत्ता, बनारस, मथुरा आदि कई स्थानों में ऐसे वैद्यों की खोज की गई, किन्तु सब जगह से यही उत्तर मिला कि पंचकर्म हमारा अभ्यस्त नहीं है। अनेक वैद्यों से ऐसा उत्तर पाकर मुझे बड़ी निराशा और आश्चर्य भी हुआ। मैं इस चिन्ता में था ही कि एक योग्य वैद्य ने सन्तोषजनक सलाह दी कि 'घबराते क्यों हो, तुम स्वयं वैद्य हो, शास्त्र तुम्हारे सम्मुख ही है, ऋषियों की आज्ञानुसार बुद्धिपूर्वक चलते चलो, कभी धोखा न होगा। परमेश्वर सहायता करेंगे और मैं भी यथा शक्ति मदद करता रहूँगा।" इन वाक्यों से मुझे बहुत कुछ सन्तोष हुआ और मैंने शरद ऋतु के आरम्भ में कार्यारम्भ कर दिया। ईश्वर की कृपा से पाँचों कर्म साङ्गोपाङ्ग पूर्ण किये और किसी प्रकार का विघ्न भी उपस्थित नहीं हुआ। बस फिर क्या था कर्म की समाप्ति पर मुझे अद्‌भुत चमत्कार दिखाई दिया। मेरा शरीर एक दम सबल, फुर्तीला और नया सा मालूम होने लगा। यद्यपि उसके पश्चात् मैंने रसायन या कल्प चिकित्सा का कोई प्रयोग भी नहीं किया था। यदि कल्प चिकित्सा का कोई प्रयोग सेवन कर लेता तो सोने में सुगन्ध की कहावत अवश्य चरितार्थ हो जाती। अस्तु, मुझे पंच-कर्म मे ही पूरा सन्तोष एवं प्रसन्नता हुई और इस नये अनुभव ने मेरी चिकित्सा-पद्धति

www.44Books.com


और इस शास्त्र की जानकारी ने नवजीवन उत्पन्न कर दिया मैं इसी समय से बड़े-बड़े पिण्ड रोगी और निराश बीमारों को अपनी चिकित्सा में लेने लगा और इस कर्म से मुझे सफलता प्राप्त हुई। मुझे यह विश्वास हो गया है कि इसके समान शरीर-शोधक और बलवर्धक कर्म अन्य किसी चिकित्सा शास्त्र में नहीं है। यूनानी पद्धति के जुलाब और 'मालजीवन' इसके सामने कोई महत्व नहीं रखते। पाश्चात्य डाक्टरी चिकित्सा पद्धति में इसकी समानता करने वाला कोई विधान नहीं है। डाक्टरों को आवश्यकता जान पड़ती है तो रेंडी का तेल या म्यागसल्फ, साल्ट आदि देकर दो चार दस्त करा दिये जाते हैं, कभी-कभी एनिमा ( पिचकारी ) से भी दस्त कराया जाता है। पर बहुत काल से संचित दोषों को झाड़ू की तरह बुहार कर साफ कर देने में जैसे पंचकर्म जैसा अन्य कोई भी कर्म नहीं है।

नीचे पंच-कर्म के पाँचों अङ्गों का संक्षेप में परिचय दिया है—

स्नेहन—यद्यपि स्नेहन के लिये दूध दही आदि अनेक पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है, तो भी चिकनाई की आवश्यकता अधिक होने के कारण घी, तेल और वसा (चर्बी) का प्रयोग ही अधिकांश में किया जाता है। इनका प्रयोग पान ( पीना ), वस्ति, शिरोवस्ति, उत्तर-वास्ति, नस्य, कर्णपूरण, मालिश और भोजन के द्वारा किया जा सकता है। इन चिकने पदार्थों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— (१) स्थावर (२) जंगम। स्थावर में वनस्पतियों से मिलने वाले तेलों की गिनती की जाती है और जंगम में घी और वसा आदि प्राणियों से प्राप्त होने वाले पदार्थ गिने जाते हैं। पर आयुर्वेदिक चिकित्सा में घी और तिल का तेल सर्वोत्तम माने जाते हैं।

**स्वेदन**—स्नेहन के बाद स्वेदन ( किसी प्रकार से गर्मी पहुँचाकर पसीना लाना ) की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा शरीर के दोष, जो स्नेहन से नर्म और ढीले पड़ जाते हैं, पिघलकर आमाशय में जाने

www.44Books.com 

लगते हैं। इससे शरीर के स्रोतों के मुख भली प्रकार खुल जाते हैं और दूषित मलों के निकलने में आसानी होती है। इसके लिये ऊपर कम्बल आदि गर्म कपड़ों का और नीचे से कोयला की धीमी आग द्वारा गर्मी पहुँचानी पड़ती है। अथवा प्राकृतिक चिकित्सा के ढंग से भाप स्नान कराके भी पसीना लाया जा सकता है। किसी एक अंग पर ही पसीना लाना हो तो किसी गरम पदार्थ का मोटा लेप करके अथवा किसी गर्म द्रव पदार्थ से सेक कर भी काम निकाला जा सकता है। आजकल बिजली के प्रयोग से भी स्वेदन का कार्य किया जाता है।

**वमन**—जब शरीर का दूषित मल स्नेहन और स्वेदन के द्वारा आमाशय में इकट्ठा हो जाता है, तो उसे बाहर निकालने के लिए वमन और विरेचन का प्रयोग किया जाता है। जिन रोगियों को कफ की शिकायत है—जैसे श्वाँस रोग आदि, उनको वमन कराना आवश्यक होता है इसमें वमन कराने वाले मैनफल आदि और औषधियों का चूर्ण और काढ़ा सेवन करके आमाशय में एकत्रित विकारों को उल्टा करके बाहर निकाल दिया जाता है। पर वमन की विधि कुछ कठिन है और इसे अनुभवी चिकित्सक की देख-रेख में ही कराना चाहिये। क्योंकि वमन अधूरा रह जाने से शरीर में तरह-तरह के नये भयंकर उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। ठीक वमन हो जाने से हृदय, पसलियों, इन्द्रियों के मार्ग स्वच्छ हो जाते हैं और शरीर खूब हल्का मालूम पड़ने लगता है। बिना वमन केवल विरेचन (दस्तावर औषधि) द्वारा दूषित मल को बाहर निकालने का प्रयत्न करने से संग्रहणी रोग उत्पन्न होजाने की सम्भावना रहती है। क्योंकि जो कफ अपने स्थान से हटा दिया गया है वह जब तक वमन द्वारा ठीक प्रकार से न निकाल दिया जाय तब तक विरेचन की औषधि देने में यह भय रहता है कि वह कफ मल निकालने वाली आँतों में लिपटकर संग्रहणी रोग उत्पन्न कर देगा। इसलिये विरेचन उसी समय करना उचित है जब यह मालूम हो जाय कि आमाशय में कफ नहीं था अथवा बाहर निकल चुका है।

www.44Books.com


विरेचन—आयुर्वेद के ग्रन्थों का मन है कि विरेचन करने के पहले फिर से एक बार स्नेहन और स्वेदन कर लेना चाहिये जिससे विकार फिर से ठीक स्थान पर एकत्रित हो जायें। विरेचन के लिये जो औषधि दी जाय वह मनुष्य के कोठे का विचार करके दी जानी चाहिये। जैसे पित्त से मृदु कोठे वाले को औषधि की मात्रा भी मृदु दी जानी चाहिये। वात और कफ से क्रूर कोष्ठ के लिये तीक्ष्ण मात्रा का प्रयोग करना उचित है। समदोष के मध्यम कोष्ठ के लिये मध्यम मात्रा देनी उचित है। विरेचन के पहले तिक्त घृत पिलाना आवश्यक है। इसके बिना इस बात की आशंका रहती है कि कहीं विरेचन की औषधि विकारों के साथ शुद्ध पित्त कफ आदि को भी दस्त के रास्ते निकालकर स्वास्थ्य को हानि न पहुंचावें। तिक्तघृत पिला देने से शुद्ध पित्त आदि अलग होकर केवल विकार युक्त पदार्थ विरेचन के द्वारा निकाला जाता है।

विरेचन के लिये शरदऋतु ( क्वार-कातिक ) का समय उत्तम माना गया है। यद्यपि वर्षा ऋतु में पित्त का संचय होता है अर्थात् शरीर में पित्त वृद्धि कारक प्रवृत्ति होती है, पर वायु में आद्रता होने के कारण उसकी वृद्धि उचित परिणाम में नहीं हो पाती। इसलिये शरद् ऋतु में जैसे ही वातावरण में परिवर्तन होता है पित्त के ऊपर का दबाव दूर हो जाता है और वह खुली अवस्था में विरेचन द्वारा निकाला जा सकता है। जब तक आँतों में से आग न निकल जाय, स्रोतों की सफाई न हो, इन्द्रियां प्रसन्न न हों, शरीर में हल्कापन न हो, अग्नि बलवान न हो तब तक विरेचन को ठीक हुआ न समझना चाहिये और आवश्यक-तानुसार औषधि का प्रयोग करते रहना चाहिये।

वस्ति--वमन और विरेचन द्वारा क्रमशः आमाशय और पित्ताशय की शुद्धि हो जाती है। फिर भी पक्वाशय, मलाशय और मूत्राशय आदि में विकार शेष रह जाना संभव होता है और इनकी शुद्धि के लिए वस्ति कर्म आवश्यक माना गया है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र के अनुसार वात

www.44Books.com


दोष की चिकित्सा में वस्ति कर्म का प्रमुख स्थान बतलाया है। शारीरिक सर्व रोगों में आधे से अधिक रोग वात दोष से होते हैं शाखागत, कोष्ठ गत, मर्मगत एवं ऊपरी सर्वांग में उत्पन्न होने वाले रोगों का मूल कारण वायु है, तथा मूत्र मल, पित्त मलाशयों में विकृत और हानिकारक वायु ही मुख्य है, और इसे शमन करने के लिये वस्ति से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। इस कारण वस्ति को अनेक विज्ञ-जनों ने चिकित्सार्ध ( चिकित्सा का आधा भाग' कहा है। सुश्रुत-संहिता में कहा है;—

'तत्र स्नेहादीनां कर्मणां वस्ति प्रधानतम माहुराचार्य।
कस्मादनेक कर्म त्वादस्तेरिह वस्तिर्नाना विधि द्रव्य
संयोगाद् दोषारण संशोधन संशमन संग्रहणति करोति !

अर्थात् "स्नेहन कर्म करने वाले सर्व विधानों में वस्ति कर्म ही प्रधान-कर्म है क्योंकि वस्ति में अनेक औषधियों का संयोग कर दोषों का संशोधन, शमन और संग्रहण किया जा सकता है। वस्ति क्षीण शुक्रवालों के लिये वाजीकरण का काम करती है, कृश को स्थूल और स्थूल को कृश करती है। नेत्रों को तृप्त कर ( नेत्र-शक्ति को बढ़ाकर ) वली पलित को दूर कर उम्र को कायम रखती है। शरीर को सुदृढ़, वर्ण, बल आरोग्य एवं आयुष्य से परिपूर्ण करती है।"

जब शारीरिक निर्बलता के कारण वमन, विरेचन आदि कार्य कठिन हो जाते हैं, तब दोषों के संशोधनार्थ वस्ति ही एकमात्र उपाय रह जाता है। छोटे बच्चे, अतिवृद्ध, अतिकृश या अतिशय स्थूल अथवा जिनकी धातु व इन्द्रिय क्षीण हो गई हैं ऐसे व्यक्ति के शरीर के किसी भाग में अन्यान्य पीड़ा या व्याधियों को उत्पन्न न होने देते हुए दोषों का शोधन सिवाय वस्ति कर्म के अन्य प्रकार से नहीं हो सकता।

वस्ति के प्रयोग की विधि आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में बड़े विस्तार से लिखी है और विभिन्न रोगों के अनुसार सैकड़ों प्रकार की औषधियों का काढ़ा क्वाथ अथवा सार तैयार करके वस्ति देने का आदेश दिया है।

www.44Books.com


पर आजकल के अधिकांश वैद्यों ने इस कार्य में कुछ झंझट या परिश्रम देखकर इसको छोड़ रखा है। अब ऐसे वैद्य बहुत ही कम मिलते हैं जिनको इस विषय का कुछ अनुभव हो। इसके बजाय अब डाक्टरी चिकित्सा में 'एनिमा' के नाम से इसका खूब प्रचार किया गया है और इसके लिये छोटे बड़े अनेक प्रकार के यंत्र तैयार किये गये हैं इनमें से दो या तीन प्रकार के विशेष प्रसिद्ध हैं। सबसे सुलभ तो एनामेल अथवा काँच का बना एक गोल और लम्बा सा बर्तन होता है, जिसमें डेढ़ दो सेर से लेकर ३-४ सेर तक पानी भरा जा सकता है इसमें ४-६ फीट लम्बी एक रबड़ की नली लगा दी जाती है। नली के नीचे वाले सिरे पर एक मसाले की बनी टोंटी लगी रहती है जो पानी के नल की तरह घुमाकर खोली या बन्द की जा सकता है। इसी टोंटी में एक चिकनी और पतली सी ३-४ अंगुल लम्बी नली लगा दी जाती है। इसीको मलाशय-द्वार में प्रविष्ट करके एनिमा या वस्ति दी जाती है। इस यंत्र द्वारा गुनगुना या ताजा जल भीतर पहुंचाकर मलाशय को शुद्ध करना तो बहुत ही सरल कार्य है। इसके सिवाय आवश्यकतानुसार आयुर्वेद दवाओं के काढ़े बनाकर उनका भी प्रयोग किया जा सकता है।

दूसरी प्रकार की एनिमा सिरिन्ज दो फीट के लगभग लम्बी रबड़ की नली होती है जिसका बीच का भाग गेंद की तरह फूला होता है। नली का एक सिरा वस्ति लेने के लिये जल या काढ़े में डुबा दिया जाता है। तथा दूसरा सिरा जिस पर मसाले की चिकनी लम्बी सी नली बनी रहती है जरा सी चिकनाई वैसलीन आदि लगाकर मल द्वार में प्रविष्ट करा दिया जाता है। तब बीच में बनी गेंद को मुट्ठी में लेकर बार-बार दबाने से पानी खिंचकर मलाशय में पहुंच जाता है। यथेष्ट जल या द्रव औषधि पहुंच जाने पर एनिमा की नली को बाहर निकाल देते हैं और सुविधानुसार दस-पाँच मिनट तक ठहराकर मल त्याग करने

www.44Books.com 

को कह देते हैं इस प्रकार भीतर का संचित मल जल में घुल कर सहज ही बाहर निकल जाता है।

तीसरी प्रकार की एनिमा पीतल की पिचकारी के रूप में होती है। जब मलाशय में बहुत रूखापन होता है जिसके कारण मल बाहर नहीं निकल सकता तो इस पिचकारी में भरकर औषधि का तेल, घी या ग्लिसरीन आदि गुदा के भीतर पहुंचाई जाती है इससे मलाशय का भीतरी भाग चिकना होकर मल के निकलने में आसानी हो जाती है।

इसी तरह की पीतल या काँच की पिचकारी द्वारा रबड़ या धातु की बनी एक ६-१० इन्च की पोली सलाई लिंगेन्द्रिय में प्रवेश कराके मूत्राशय को शुद्ध किया जाता है। आयुर्वेद में इसका नाम उत्तर वस्ति है। स्त्रियों के योनिमार्ग के भीतर भाग को शुद्ध करने के लिए भी एक भिन्न प्रकार की मसाले की बनी लम्बी नली आती है जिसे एनिमा या पिचकारी के सिरे पर लगाकर औषधि मिश्रित जल को भीतर तक पहुंचाया जा सकता है

## कुटी-प्रवेशिका विधि से कल्प चिकित्सा

आयुर्वेद के प्रमुख आचार्यों ने कल्प चिकित्सा के लिए दो प्रकार की विधियाँ बतलाई हैं— 'एक कुटी-प्रवेश' तथा दूसरी वात-तापिका। कुटी-प्रवेश की विधि काफी कठिन होती है और उसके नियमों का पालन कर सकना साधारण मनुष्यों के लिये कठिन है। साथ ही वर्तमान समय में उसके लिये विशेष साधनों की भी आवश्यकता होती है। इसलिये कितने ही विद्वान आजकल की परिस्थितियों में 'कुटी प्रवेश' को व्यवहारिक नहीं मानते। पर इससे इस चिकित्सा पद्धति का महत्व कम नहीं हो सकता। जब एलोपैथिक चिकित्सा के लिये एक एक यंत्र दस वीस हजार रु० का आता है और एक एक इन्जेक्शन सौ रुपये तक का लगा दिया जाता है, तो काया कल्प की 'कुटी' की व्यवस्था के लिये यदि दो चार या दस पाँच हजार का व्यय होता है तो कोई बात नहीं।

www.44Books.com


यदि एलोपैथिक की तरह इस पद्धति को राजाश्रय प्राप्त हो और इसके लिए चिकित्सकों को विधि पूर्वक शिक्षा दी जाय तो कोई कारण नहीं कि अनेक कठिन रोगों को दूर करके शरीर को पुनः कार्यक्षम बनाने के लिए इस विधि का सफलता पूर्वक प्रयोग न किया जा सके। इस समय इस विधि का विवरण पढ़कर हमको जो कठिनाइयां जान पड़ती हैं उसका कारण यही है कि यह समस्त व्यवस्था किसी एक व्यक्ति के लिए विशेष रूप से करनी पड़ती है। यदि किसी चिकित्सालय में इसकी व्यवस्था नियमित रूप से की जाय और इस विधि के विशेषज्ञ सदैव इस उपचार को करते रहें तो यह साधारण और मध्यम दर्जे के व्यक्तियों के लिये भी सुलभ हो सकती है। जो कार्य आज दस पाँच हजार रु० में हो सकता है वही पाँच सौ रु० में भी सहज में किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ 'चरक' सुश्रुत' आदि में वर्णित कुटी प्रवेश की विधि का विवरण एक विद्वान चिकित्सक के लेख से यहाँ दिया जा रहा है–

त्रिगर्भा कुटी—जहाँ विद्वानों और सच्चरित्र व्यक्तियों का निवास हो और कल्प के उपयोगी समस्त औषधियाँ सुलभता से प्राप्त हो सकती हों ऐसे मनोरम और पवित्र स्थान में पूर्व या उत्तर दिशा में कुटी का निर्माण करना चाहिए।

कुटी यथेष्ट लम्बी ऊँची और त्रिगर्भा होनी चाहिए। भीतर की मुख्य कुटी जिसमें रसायन सेवी रहे, वह कम से कम १२ फीट लम्बी, १२ फीट चौड़ी और इतनी ही ऊँची भी हो। इसका एक दर्वाजा पूर्व दिशा में हो। इसके बाद पहली कुटी के चारों ओर आठ फुट चौड़े बरामदे के रूप में दूसरी कुटी हो, इसमें एक दर्वाजा पश्चिम दिशा में रखा जाय। इसमें आवश्यक सामान रखने के लिये यदि आलमारी लगा दी जाय तो अच्छा है। दूसरी कुटी के चारों ओर तीसरी कुटी का निर्माण किया जाय। यह भी आठ फीट चौड़े बरामदे के रूप में होगी और इसमें एक

www.44Books.com 

दर्वाजा उत्तर दिशा की ओर रखा जायगा। इस प्रकार तीन गर्भ की कुटी बनाने से बाहर का प्रकाश भीतर की कुटी में नहीं जा सकेगा और न हवा का झोंका लग सकेगा चाहे कैसी भी जोर की वायु क्यों न बह रही हो। तीनों कुटियों की दीवारें एक दूसरे से ३-४ फीट ऊँची रहनी चाहिए जिससे उन पर पुराने ढंग के बंगलों की तरह एक ही छप्पर छाया जा सके। छप्पर के बजाय कुटी की छत यदि पक्की बनादी जाय तो उसमें होकर छप्पर की सी सूक्ष्म वायु गर्मी भीतर पहुँच सकेगी। कुटी पूर्ण रूप से सूखी, लिपी पुती और स्वच्छ होनी आवश्यक है। उसके समीप किसी प्रकार का शोरगुल या अश्लील शब्द सुनने में न आवे। स्त्री का प्रवेश बिलकुल निषिद्ध हो।

कुछ लोग इस विधि को पढ़कर यह ऐतराज करेंगे कि वायु और प्रकाश तो स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य पदार्थ हैं, उनसे सर्वथा बचे रहने का विचार बुद्धि संगत नहीं कहा जा सकता यह कथन साधारण परिस्थिति के लिए ठीक है पर जब मनुष्य के शरीर में रस रक्त की कमी को दूर करने के लिये विशेष प्रकार की चिकित्सा की जा रही है तो उस समय रहन-सहन भी उसी के अनुसार बदल देना आवश्यक है। उस समय यदि मनुष्य हमेशा की तरह धूप और वायु में परिश्रम का कोई कार्य करता रहे तो रस और रक्त की वृद्धि नहीं हो सकती।

**माननीय मालवीय जी का अनुभव**—फिर कुटी प्रवेश का काया कल्प सबके लिये उपयुक्त भी नहीं बतलाया गया। जो कल्प-चिकित्सा पर पूर्ण श्रद्धा रखता हो, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को अपने वश में रख सकता हो, सत्य भाषी,दयालु, धर्म परायण, सोने और जागने में नियमित हो, धैर्यवान हो, ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाला हो वही कुटी प्रवेश के विधान के अनुसार कल्प कर सकता है। इसके सिवा इसमें साधनों की भी विशेष आवश्यकता पड़ती है। जैसा सब लोग जानते हैं

www.44Books.com 

माननीय पं० मदन मोहन मालवीय ने लगभग सत्तर वर्ष की आयु में (सन् १९३८ में) कल्प चिकित्सा कराई थी। इसके सम्बन्ध में जनता में अनेक प्रकार की बातें फैली थीं। इस पर स्वयं मालवीय जी ने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया था वह केवल कल्प चिकित्सा की उपयोगिता पर ही प्रकाश नहीं डालता वरन् उसकी व्यवहारिक प्रक्रिया का भी परिचायक है। मालवीय जी ने लिखा था—'मेरी काया-कल्प चिकित्सा पर बहुत चर्चा हो रही है। अपनी 'कुटी' से बाहर आकर मुझे यह जान कर दुख हुआ कि मेरे काया कल्प के बारे में बहुत विज्ञापन किया गया है और इसके परिणाम के बारे में भी बड़ी-बड़ी आशायें बाँधी गयी हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इस चिकित्सा सम्बन्धी सच्ची बातों और उसके परिणामों को जानने के लिये जनता उत्सुक है।'

यौवनावस्था पुनः प्राप्त करने के लिये कल्प चिकित्सा आयुर्वेदिक औषधि प्रणाली का आन्तरिक भाग है। 'चरक संहिता' के कई अध्यायों में इस चिकित्सा का वर्णन है। सुश्रुत, वाग्भट्ट और अन्य लेखकों ने भी इसके बारे में लिखा है और इस उद्देश्य के लिये जिन औषधियों का उल्लेख किया गया है, उनको 'रसायन' नाम से पुकारा गया है।

इस चिकित्सा से कौन अच्छा लाभ उठा सकता है इस विषय में 'चरक संहिता' में कहा है:—

'जो सत्यवादी है, क्रोध से मुक्त है, भोग-विलास तथा मांस भक्षण से परे है, मारकाट तथा थकावट के कामों से दूर रहता है, सहनशील है, जप करता है, मन और शरीर जिसके शुद्ध हैं, सदाचारी है, सन्तुष्ट है, उदार और दानी है, देवताओं, गऊ, ब्राह्मणों, साधुओं, अध्यापकों तथा वृद्धों का आदर करता है, जो नीच कर्मों से बचता है, जिसका हृदय कोमल है, ज्ञानी है, जो ठीक समय पर सोता जागता है, भोजन में दूध का प्रयोग करता है, समय की कीमत को समझता है, तर्क और अधिकार को मानता है, गर्व से दूर है, अपने धर्म में दृढ़ है,

www.44Books.com


धार्मिक बातों को समझता है। अपने मन पर जिसका काबू है और इसे सर्वशक्तिमान के ध्यान में लगाता है, ईश्वर में जो विश्वास रखता है और जो धर्म शास्त्रों के आदेश का पालन करता है, वही मनुष्य बिना रसायन सेवन किये कल्प-चिकित्सा से लाभ उठा सकता है। अगर ऐसे गुणों वाला मनुष्य कल्प-चिकित्सा में रसायन का सेवन भी करता है तो उसे इस चिकित्सा का पूर्ण लाभ मिलता है।'

कल्प-चिकित्सा दो प्रकार की होती है—(१) कुटी-प्रवेश और (२) खुली हवा में। पहले प्रकार में रोगी को एक कुटी में जो कि खास तौर से उसके लिये बनाई जाती है, बन्द कर दिया जाता है। और जब तक चिकित्सा नहीं हो जाती उसे बाहर निकलने नहीं दिया जाता। निस्सन्देह यह तरीका ज्यादा प्रभावशाली है, पर साधारण आदमियों के लिये इसमें लगाई गई बहुत सी पाबन्दियों का पालन करना बड़ा कठिन है। इसलिये ऐसे लोगों के लिये खुली हवा में रहकर कल्प चिकित्सा करने का विधान भी बताया गया है।

पर किसी भी विधि से चिकित्सा की जाय, 'चरक' का कथन है कि चिकित्सा किसी योग्य वैद्य द्वारा करानी चाहिये, जो रोगी को अपने बच्चों की तरह समझे। रोगी को भी वैद्य का आदर करना चाहिये। जो वैद्य कल्प-चिकित्सा का अभ्यास करते हैं उन्हें लोभ और रुपये पैसे के लालच से मुक्त रहना चाहिये।

## "स्वानुभव"

कुछ लोगों ने समय समय पर कल्प-चिकित्सा कराई है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्रथम प्रकार से, अर्थात् 'कुटी-प्रवेश' से केवल साधु सन्यासियों को ही लाभ प्राप्त होता है, और गृहस्थों को इससे बहुत कम लाभ पहुंचा है। ढाई साल का अर्सा हुआ, जब एक उदासी साधु बाबा किशनदास उर्फ तपसी बाबा ने, जो कई साल से मथुरा जिले के 'कोतवन' नामक स्थान में रहते थे, कुटी-प्रवेश के तरीके से

www.44Books.com 

अपना काया कल्प किया। यह प्रयोग सफल हुआ। कुटी प्रवेश से पहले लोगों ने उन्हें ६५-७० साल के बीच का वृद्ध और गम्भीर आकृति का देखा था। किन्तु जब वे ४० दिन के काया कल्प के बाद कुटी से निकले तो लोगों को उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे ४० वर्ष की आयु से अधिक नहीं जँचते थे।

एक बार मथुरा के दो सज्जन मुझसे मिले और उन्होंने मुझे काया कल्प कराने को कहा। मैंने उनसे कहा कि पहले मुझे उस साधु से मिला दीजिये, जिसने काया कल्प किया है। क्योंकि उनसे मिले बिना मैं कोई निश्चय नहीं कर सकता था। इसके कुछ दिन बाद गाजियाबाद के आनन्द स्वामी, पं० हरदत्त शास्त्री के साथ मुझसे मिलने आये। उन्होंने मुझ पर काया कल्प कराने के लिये जोर डाला। उनसे भी मैंने यही कहा कि बिना उस साधु से मिले मैं कोई निर्णय नहीं कर सकता।

कुछ दिन बाद आनन्द स्वामी, तपसी बाबा को लेकर मेरे पास आये। तपसी बाबा वास्तव में ३५-४० साल के जंचते थे। उनसे बातचीत करने के बाद मैंने भी काया कल्प चिकित्सा कराने का विचार प्रकट किया। अपने निकट सम्बन्धियों और मित्रों को मैं बड़ी कठिनाई से इस चिकित्सा के लिये राजी कर सका, क्योंकि ऐसी कमजोर हालत में वे नहीं चाहते थे कि मैं ऐसी कठोर चिकित्सा का सामना करूँ। लेकिन मैंने अन्त में काया कल्प कराने का निर्णय कर ही लिया। बाबा जी ने पं० हरदत्त शास्त्री को भी, मेरे ही साथ-साथ काया कल्प कराने को कहा, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। १४ जनवरी सन् १९३८ को चिकित्सा शुरू हुई और २४ फरवरी को समाप्त हुई। पं० हरदत्त शास्त्री और मैं दो अलग-अलग कुटियों में जो ५० फीट के अन्तर पर थीं, पूरे ४० दिन तक रहे। ये बड़ी कठोर तपस्या के दिन थे। ४० दिन तक हमने सूर्य नहीं देखा और न हमने बराण्डे में आकर भी ताजी हवा का अनुभव किया। समय बिताने को हम कभी २ कुछ पढ़ सकते

www.44Books.com


थे। मेरी कुटी से मिले एक दूसरे कमरे में एक पंडित वेद मन्त्रों के साथ रुद्राभिषेक करते थे और दूसरी ओर के कमरे में एक पंडित श्रीमद्भगवद् गीता का पाठ करते थे। कभी-कभी हमें अपनी ही कुटी में किसी के साथ मुलाकात करने की आज्ञा मिल जाती थी। स्नान, व्यायाम तथा हजामत आदि सब मना थे। चिकित्सा काल में हमें केवल गर्म पानी प्रयोग करना पड़ता था। दिन और रात में अधिकांश समय अँधेरे में ही रहना पड़ता था और केवल आवश्यकता पड़ने पर मोमबत्ती जलाई जाती थी। हमारा भोजन केवल काली गौ का दूध था। हम जितना दूध पी सकते थे उतना ही हमें मिल जाता था। मैं रोज १॥ सेर से २ सेर तक दूध पी जाता था।

मेरे मित्र पं० हरदत्त शास्त्री और मुझे कल्प से लाभ पहुंचा। शास्त्री जी को जो मुझसे १४ साल छोटे हैं, बहुत स्वास्थ्य लाभ हुआ चिकित्सा के पहले और बाद में लिये गये चित्रों से ही यह साफ प्रकट हो जाता है। मेरा वजन ६ पौण्ड बढ़ा, त्वचा के रंग और बनावट में भी सुधार हुआ। मेरी स्मरण शक्ति बहुत बढ़ गई, बाल पहले से काले हो गये। हाथ पहले से अब बहुत कम काँपते हैं। मैं सीधा होकर चलता हूं। जो निराशा की भावना मुझ पर सवार होती जा रही थी वह अब दूर हो गई है, और उसके स्थान में आशा और विश्वास के नये अंकुर उत्पन्न होने लगे हैं।'

शास्त्री जी का अनुभव—मालवीय जी के साथ जिन शास्त्री जी ने काया कल्प कराया था, वे लिखते हैं—'हमारे कल्प की औषधि नित्य प्रति शङ्कर गढ़ के जंगल में तैयार होती थी। प्रातः काल तपसी बाबा और मालवीय जी के कनिष्ठ पुत्र श्री मुकुन्द मालवीय कल्प की औषधि तैयार करके हमको देते थे। यह औषधि थी पलाश परिपक्व आमला ५ तोला, शहद ४ तोला और गौ घृत ५ तोला। यह औषधि एक चाँदी के पात्र में चाँदी के चम्मच से खूब मिला कर प्रातः और सायं दोनों समय दी जाती थी। दवा लेने के तीन घन्टा बाद गाय का गरम

www.44Books.com


दूध बिना शक्कर डाले पीने को दिया जाता था। दवा स्वाद में कसैली लगती थी और जी मिचलाता था। पाँच—छः दिन बाद औषधि का प्रभाव मालूम पड़ने लगता है। पहले हाथ पैरों में कुछ जलन तथा निद्रा भङ्ग होती है। पुनः दस दिन बाद रोज दो तीन बार पतला दस्त आता है तब हाथ पैर की जलन कम होने लगती है।

मैं एक छोटे से कमरे में लकड़ी के तख्त पर गद्दे के ऊपर सो जाता था। उसी कमरे में एक ओर पूजा करने के लिये स्थान कर लिया था। कमरे में घी का दिया जला कर काम लिया जाता था। जब जरूरत पड़ती थी तो घण्टी बजा कर आदमी को बुला लेता था, जो गर्म पानी तैयार किये बरामदे में रहता था। घण्टी का शब्द सुनकर वह दरवाजे पर आकर जो काम करना हो, करके चला जाता था। चालीस दिन तक शौच से मुँह हाथ धोने तक का काम गर्म पानी से ही करता रहा। मञ्जन, साबुन आदि किसी भी वस्तु का प्रयोग नहीं किया। केवल गरम जल और उंगलियों से दांत साफ करके मामूली तौर पर गरम जल से मुँह पोंछ लेता था। दिन भर पैर में मोजा ( जुर्राब ) पहिनता था और सोते समय खोल देता था। इकतालीसवें दिन जब पैर धोने की बारी आई तो देखा कि मेरे पैर के तलवे मुर्दे की तरह हो गये हैं। गरम जल में पैर डालने के थोड़ी देर बाद पैर की चमड़ी निकलने लगी। दूसरे दिन उबटन लगाकर पैर धोये और गर्म जल में तौलिया भिगोकर बन्द कमरे में बैठकर जल्दी से बदन पोंछ लिया। कल्प समाप्ति के ४—५ दिन बाद गरम जल से स्नान किया। इकतालीसवें दिन केवल मूँग का यूष नमक डालकर थोड़ा-सा लिया। इसी प्रकार दूसरे दिन भी किया। तीसरे दिन चने का यूष लिया। ४४ वें दिन से कभी कभी दूध में शहद या मिश्री डालकर लेने लगा। लेकिन अभी तक हम लोग बाहर बरामदे तक नहीं गये, सिर्फ एक दरवाजा खोल लेते थे। चार दिन बाद गरम वस्त्र पहन कर मैं और पूज्य पण्डित मालवीय जी बाहर आये और दोनों ने प्रीति पूर्वक मिलकर भगवान को धन्यवाद दिया।

www.44Books.com


उपस्थित जन-समूह ने हम लोगों को देख कर प्रसन्नता प्रकट की। यद्यपि दिन के दो बजे थे और मैं काफी वस्त्र भी पहने था, तथापि शीतल वायु के लगने से मेरी उङ्गलियों और हाथ में पीड़ा हो गयी जो गर्म सेक से शांत हुई। तीन दिन बाद हम लोग मूँग की दाल, चावल, फुलका आदि खाने लगे।"

स्वर्गीय मालवीय जी के काया कल्प के विवरण को पढ़ कर कुछ पाठक अवश्य यह जानना चाहेंगे कि उनको जो पलाश परिपक्व आंवले का रसायन दिया जाता था वह किस विधि से निर्माण किया जाता है। निस्सन्देह उसकी विधि भी ऐसी है जिसे साधारण मनुष्य जो नगरों या बड़े कस्बों में रहते हैं, सहज में पूरा नहीं कर सकते। वैद्यक-ग्रन्थों के अनुसार वह इस प्रकार है:—

"पलाश के उत्तम हरे-भरे १० या १२ वर्ष के पुराने निरोग वृक्ष को जिसकी गोलाई तीन—चार हाथ की हो चुनलें। तत्पश्चात् जमीन से तीन हाथ नापकर शेष ऊपरी भाग को आरी से कटवादें। कटे हुए तना (मूल) वाले भाग में लगभग १॥ हाथ गहरा खरल जैसा इतना चौड़ा गड्ढा करावें कि ऊखल के चारों ओर २ इन्च मोटी लड़की का घेरा बच जाय। फिर चरक आदि ग्रन्थों में लिखे गये मन्त्रों से अभिमंत्रित करके शुद्ध, निर्विकार, सुन्दर, जल में डूबने वाले वजनदार और गूदेदार १०८ आंवलों को उस पलाश की ओखली में पर्तवार बिछा दें। उसके ऊपर सात औषधियाँ—आम्र, आंवला, ब्राह्मी, मुण्डी, बिल्व, पुनर्नवा, भृङ्गराज का चूर्ण बिछा दें। प्रत्येक औषधि का चूर्ण प्रत्येक आंवले के हिसाब से एक माशा यानी १०८ आंवले के लिये ९ तोला पर्याप्त है। क्रम से आंवलों की तह लगादें और प्रत्येक तह में ऊपर चूर्ण बिछा दिया करें। पलाश के उसी वृक्ष की लकड़ी की एक ऐसी डाट भी बनवायें जो उस ओखली के मुख पर फिट बैठ जाय। आंवलों

www.44Books.com


की ओखली में भर चुकने पर इस डाट को बोतल के काग की तरह उसके मुख पर मजबूती से जमादें और संधि को चिकनी मिट्टी से भर दें क्योंकि ऐसा न करने से आंवलों का अर्क भाप बन कर उड़ जायगा। उस लकड़ी के डाट के चारों तरफ दर्भ (कुशा) को खूब अच्छी तरह एक अंगुल मोटा लपेट दें और फिर तालाब के नीचे की चिकनी मिट्टी से दर्भ को और लकड़ी के डाट को अच्छी तरह ढकदें। सूख जाने पर सूर्यास्त होने पर पलाश के मूल के चारों तरफ गजपुट के विधानुसार जङ्गली उपलों (कण्डों) की अग्नि दें। यह कार्य किसी अनुभवी व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिए जिससे आंवले ठीक ठीक परिपक्व हो जावें। दूसरे दिन प्रात काल अग्नि के ठण्डा हो जाने पर ओखली का मुंह खोलकर ढाक के चिमटे से एक एक आंलवा बाहर निकालें और जब आंवले ठंडे हो जांय तो उनको एक-एक करके उत्तम शहद से भरे कांच या चीनी मिट्टी की बनी (अमृत वान) में डाल दें। इस प्रकार तैयार किये हुए आंवले १५ दिन तक काम दे सकते हैं।

साधक अपनी इच्छानुसार उपरोक्त रीति से स्वेदित आंवलों को उत्तम गाय का घृत और उत्तम छोटी मक्खी के शहद के साथ मिलाकर अवलेह बनाकर सेवन करें और ऊपर से धारोष्ण दूध पियें। शुद्ध चाँदी के एक बड़े कटोरे पर एक नया मजबूत खादी का कपड़ा बाँध स्वेदित आंवले को रख चाँदी के चम्मच अथवा पलाश की करछुली द्वारा मर्दित कर छूछ (रेशा) और गुठली निकाल डाले। जमे हुए अवलेह में गाय का घृत-मधु यथा रीति मिला कर नित्य सेवन करे। रसायन सेवन करने के ३-४ घण्टे पश्चात भूख लगने पर तुरन्त दुहा हुआ (धारोष्ण) दूध युक्ति पूर्वक छना हुआ १ पाव से एक सेर तक यथाशक्ति पीवे। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा दूध ३-४ वार धीरे धीरे पीये जिससे लाला ग्रन्थियों का रस मिल कर सुपाच्य हो सके। भिन्न भिन्न प्रकृति के मनुष्य होते हैं, अतएव उनकी प्रकृति के अनुसार रसायन में थोड़ी सी कमी बेशी की जा सकती है। उदाहरणार्थ पित्त प्रधान वाले

www.44Books.com 

को घृत कुछ अधिक मात्रा में मिलावें और दूध की मात्रा भी बढ़ादें। कफ प्रधान वालों को मधु कुछ अधिक मात्रा में मिलाना चाहिए तथा दूध की मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिए। वात प्रधान वाले रसायन अधिक लें और दूध कम। इस प्रकार शक्ति और प्रकृति के अनुसार रसायन सेवन करें।

रसायन सेवन काल में वर्जित कर्म—साधक का कर्त्तव्य है कि वह कल्प काल में शीतल जल का उपयोग भूल कर भी न करे। असत्य एवं कुटिल भाषण न करे। मरने एवं जनने का सूतक काल उपस्थित होने पर भी दृढ़ चित्त रहे एवं सूतक न माने। गाना, बजाना, नाचना अदि के सुनने की उत्कंठा न करे। अन्धकार से न घबड़ाये, भय को दूर रखे, क्रोध को त्याग दे, व्याकुलता, क्षोभ एवं भ्रान्ति को हृदय से निकाल डाले। दुग्ध पान अपनी पाचन शक्ति से अधिक न करे। मीठा यदि ले तो जरा सी मिश्री डाल दे। मांस, मदिरा, गांजा, तम्बाखू इन सबका परित्याग कल्प करने से कम से कम एक वर्ष पहिले से करदे। हाथ, पैर, शरीर एवं नाखून साफ रखे। पहिनने एवं बिछौने के कपड़े साफ रखे तथा नित्य धूप में सुखता रहे। ब्रह्मचर्य से रहे, कुविचार मन में न लावे। अग्नि, वायु तथा सूर्य के प्रकाश से बचा रहे।

कल्प के समय आने वाली बाधायें—साधक को रसायन सेवन-काल में कभी कभी कुछ कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ता है। अतएव उन्हें साहस तथा निर्भीकता के साथ सहन करना चाहिए। जो साधक अम्ल रस का सेवन नहीं करते उनके दाँत खटा जाते हैं, उनमें टीस उत्पन्न होती है और वे कमजोर पड़ जाते हैं। अम्ल-कषैले रस के कारण एवं दुग्ध पान से किसी किसी मनुष्य को अफरा भी हो जाता है किसी को वमन और जुलाब होने लगते हैं। अन्धकार में रहने तथा वायु मण्डल की कमी के कारण मन में उद्वेग सा रहता है। मानव स्वभाव एकान्त वासी न होने से उसे कठिनाइयां उपस्थित होती हैं— मन में व्यग्रता होती है सुस्ती एवं निद्रा आती और निर्बलता प्रतीत

www.44Books.com


होती है। समस्त शरीर में अग्नि सी भभकती प्रतीत होती है। यह जलन जुलाव होने के बाद गायब हो जाती है। इन कारणों से साधारण आदमी कुटी-प्रवेश की विधि से कदाचित ही कल्प कर सकते हैं। उनको बीच ही में कल्प तोड़ने की भावना होने लगती है। अगर घबड़ा-कर चिकित्सा को बन्द करदे तो उसे लाभ के स्थान पर हानि ही उठानी पड़ेगी। अतएव इस चिकित्सा का निश्चय पूर्ण सोच विचार कर करना चाहिए।

कल्प साधक को अपने चिकित्सक के आदेशानुसार चलना चाहिए। चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि साधक की स्थिति देख कर उसके अनुकूल कार्यक्रम समझा दे। ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर भगवत आराधना करे। शौचादि में नित्य गरम जल का उपयोग करे। हाथ, मुँह आदि गरम जल से धोये तथा ५॥ या ६ बजे भगवान या अपने इष्टदेव का स्मरण कर रसायन सेवन करे। रसायन सेवन के बाद कुछ देर तक आराम करके ८ या ९ बजे दुग्धपान करे। दूध अपनी रुचि और भूख के अनु-सार ही पीना चाहिये। तत्पश्चात आसन पर बैठ कर मानस जप करता रहे। शाम को संध्या वन्दनादि करे। इस प्रकार कम से कम ४० दिन तक शांतिमय जीवन बिताने से शरीर सब प्रकार की वाध-ओं से मुक्त और सब प्रकार से सबल और कार्यक्षम हो जाता है वैसे तो आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ 'चरक संहिता' आदि में इस प्रकार के कल्प प्रयोग के फल से फिर से नये दांत और बाल आकर पूर्ण युवा हो जाने तथा सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहने की बात लिखी है, पर वह बातें वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं जान पड़तीं।

## कल्प-चिकित्सा हेतु शरीर-शोधन-प्रक्रिया

उपरोक्त विवेचन से पाठक कल्प चिकित्सा की वैज्ञानिकता और उपयोगिता को समझ गये होंगे। वर्तमान समय में लोगों ने चिकित्सा का अर्थ रोग को दूरकर देना ही मान लिया है। आजकल की डाक्टरी

www.44Books.com


चिकित्सा का उद्देश्य तेज से तेज दवा देकर, विष द्रव्यों की पिचकारी लगाकर, चीर फाड़ कर-किसी भी तरह तात्कालिक रोग को दूर कर देना होता है वे लोग इस बात पर बहुत कम ध्यान देते हैं कि आगे चल कर उस मनुष्य का स्वास्थ्य ऐसा हो जाय कि उसके शरीर पर रोगों का आक्रमण न हो सके और वह दीर्घ जीवी हो। पर प्रचीन आयुर्वेद का यही सिद्धान्त था और इसीलिये उसे चिकित्सा शास्त्र न कहकर आयु ( जीवन ) की रक्षा का विज्ञान कहा गया था। यही कारण है कि आयुर्वेद किसी रोगी की केवल शारीरिक चिकित्सा करने की बिधि ही नहीं बतलाता वरन् वह उसके मानसिक सुधार और आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान देता है। वह रोगी की चिकित्सा आरम्भ करते समय उसके चरित्र नैतिकता, आचार विचार, धार्मिक प्रवृत्ति, ईश्वर भक्ति, परोपकारमय जीवन आदि बातों पर भी ध्यान देता है। यद्यपि आजकल के वैज्ञानिकों की दृष्टि में जो मनुष्य के शरीर को केवल कार्वोहाइड्रेट प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस आदि भौतिक पदार्थों का मिश्रण मानते हैं उन्हें ये बातें व्यर्थ जान पड़ेगी, जिनका विश्वास है कि भौतिक पदार्थों के अतिरिक्त मनुष्य के निर्माण में मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों का भी पर्याप्त अंश है, वे आयुर्वेद के सिद्धान्त को पूरी तरह सत्य मानेंगे।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि मन्दाग्नि से सब ही रोग उत्पन्न हो सकते हैं, विशेष करके अतीसार, ग्रहणी आदि रोग मन्दाग्नि से उत्पन्न होते हैं। मन्दाग्नि रोग को समझने के लिए अग्नि के स्वरूप को समझना होगा। जो पित्त पक्वाशय, आमाशय, ग्रहणी आदि स्थानों में रह कर चतुर्विधि अन्न का परिपाक करता है, तथा रस, दोष, मूत्र, पुरीष को पृथक-पृथक करने के योग्य बनाता है उसको पाचक पित्त कहते हैं।'चरक' के अनुसार सात धातुओं में भी सात प्रकार की अग्नि मानते हैं, जिनके द्वारा रसादि धातुओं का भी ठीक ठीक तरह से पाक होना है। यद्यपि चतुर्विधि अन्न के परिपाक के लिये एक ही पाचक

www.44Books.com


पित्त सूत्र रूप में कहा गया है, फिर भी परीक्षण द्वारा सिद्ध हुआ है कि भिन्न—भिन्न वस्तु के परिपाक के लिए भिन्न—भिन्न प्रकार के पाचक पित्त की आवश्यकता होती है, उससे स्नेह या मांसादि का पाक नहीं होता। यही बात अन्य खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में भी है।

मन्दाग्नि की चिकित्सा करने वाले चिकित्सक को ध्यान देना पड़ता है कि इस मन्दाग्नि वाले का कौनसा पाचक-रस कमजोर है, अर्थात् कम मात्रा में आता है। जिस रोगी को जो पाचक रस कम आता है उसे तदनुसार औषधि देनी चाहिये। पाचक यन्त्र को यथोचित संचालित करके पाचक रस निकालने वाली समान वायु की विकृति से पाचक-यन्त्र यदि अपना काम ठीक तरह से नहीं करता है तो उसे उत्तेजक औषधि द्वारा उत्तेजित कराके मदाग्नि को ठीक किया जा सकता है। जैसे यदि घोड़ा आलस्य के कारण चलना नहीं चाहता या मन्दगति से चलता है, तो उसे चाबुक से उत्तेजित करके द्रुतगति से चलाया जा सकता है। किन्तु यदि घोड़ा वास्तव में निर्बल हो गया है तो वह चाबुक से नहीं चलता है और उसे विश्राम देकर पोषक खाना खिलाना पड़ता है। इसी प्रकार जब पाचक यन्त्र ही दुर्बल हो जाता है, तब उसके लिए उत्तेजक औषधि हानिकारक होती है। उस समय आवश्यक होता है कि पाचक यन्त्र को भी विश्राम देकर उसको पोषक द्रव्य पहुँचाया जावे। किन्तु पाचक यन्त्र को सर्वथा विश्राम देकर शरीर को जीवित रखना असम्भव हो जाता है इस परिस्थिति में कल्प-चिकित्सा ही सफल हो सकती है। इसका आशय यह है कि कल्प-चिकित्सा में एक ही खाद्य पदार्थ दूध, दही या छाछ आदि दिया जाता है, जिसको हजम करने के लिए सारे पाचक यन्त्रों को पूरी तरह से परिश्रम नहीं करना पड़ता। अधिकाँश यन्त्रों को पर्याप्त विश्राम मिल जाता है। कल्प में जो औषधि दी जाती है वह भी उस वस्तु को हजम करने में पूरी सहायता देती है। जो संग्रहणी रोगी अच्छी एलोपैथिक चिकित्सा से डेढ़-दो मास में अच्छा नहीं हुआ था, और डेढ़

www.44Books.com


पाव तक हजम नहीं कर सकता था, वह रस पर्पटी की क्रमशः बढ़ाई गई मात्रा से सात दिन में दस सेर तक हजम करने लगा, और ४० दिन में इसी प्रकार औषधि और तक्र लेकर निरोग हो गया। कल्प-चिकित्सा में रस पर्पटी, स्वर्ण-पर्पटी, आदि जिन औषधियों का व्यवहार किया जाता है वे उत्तेजक या दीपक-पाचक नहीं होतीं, वरन् पाचक यन्त्रों को क्रमशः सबल करके स्वाभाविक अवस्था में ले आती हैं।

कल्प-चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने के लिये प्रथम यह निर्णय करना होता है कि किस रोगी के लिये कौन सी औषधि और कौन-सा पथ्य ठीक रहेगा। दूध, दही और तक्र में से रोगी की रुचि जिस पर अधिक है, प्रायः वही पदार्थ उसके अनुकूल पड़ता है। पर्पटीयों में से साधारण ग्रहणी में रस पर्पटी, हृदय दुर्बल और रोगी अधिक कृश हो तो स्वर्ण पर्पटी, रोगी का यकृत, खराब हो, आँतों में सूजन के कारण पेट में अधिक वायु बढ़ता हो तो पंचामृत-पर्पटी, रोगी बहुत क्षीण हो और आँतें अधिक शिथिल पड़ गई हों तो विजय-पर्पटी का प्रयोग अच्छा रहता है।

पर कोई भी औषधि दी जाय और किसी भी पदार्थ का कल्प किया जाय, उसके लिए शरीर शोधन सबसे आवश्यक और प्रथम कर्म है। जब तक व्याधियों का मूल कारण दूषित मल शरीर के विविध अङ्गों में जमा है तब तक उत्तम से उत्तम शक्ति प्रदायक औषधि और पथ्य भी विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकते। इसलिये आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों, जैसे चरक, सुश्रुत, अष्टांग हृदय आदि में कल्प-चिकित्सा के पूर्व पंच-कर्म की व्यवस्था की है। उनका स्पष्ट आदेश है कि जब तक (१) स्नेहन (२) स्वेदन (३) वमन (४) विरेचन (५) वस्ति द्वारा शरीर में स्थिति बढ़े हुए दोषों का शमन नहीं किया जायगा तब तक मनोवांछित सफलता प्राप्त हो सकना असम्भव है। यह हो सकता है कि रोगी की शारीरिक अवस्था को देखकर इनमें कुछ अधिकता या कमी की जा सके। बहुत से रोगी इतने कमजोर और मृत प्रायः हो

www.44Books.com


जाते हैं कि उन पर स्वेदन, वमन आदि का प्रयोग सम्भव ही नहीं होता। उस दशा में केवल वस्ति का प्रयोग करके ही मल को दूर किया जाता है। पर भाई पूर्ण आरोग्य लाभ करना है तो शक्ति आने पर पुनः शरीर-शोधन का प्रयत्न करना चाहिये । यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक रोगी को ये पाँचों कर्म समान रूप से किये जायें। कुशल चिकित्सक रोगी की अवस्था और रोग उत्पन्न करने वाले विकारों का ठीक पता लगाकर किसी कर्म को कम और किसी को ज्यादा मात्रा में कर सकता है।

## रूक्षता मिटाने का स्नेहन

'स्नेहन' का अर्थ हैं शरीर की रूक्षता दूर कर स्निग्धता (चिकनाई) का प्रसार करना। जिस प्रकार किसी पुरानी ओर जंग लगी मशीन की सफाई के लिये सबसे पहले उसके तमाम पुर्जों में भली प्रकार तेल छोड़ दिया जाता है जिससे जङ्ग नर्म पड़ जाय और जकड़े हुए पुर्जे कुछ ढीले पड़ जायें, लगभग वही क्रिया शरीर में करनी पड़ती है। स्नेहन क्रिया छः प्रकार से की जाती है। प्रथम तो स्नेहन के पदार्थ को मुख द्वारा या वस्ति द्वारा आँतों में पहुँचाकर पाचन यन्त्रों का स्निग्ध करना। दूसरी क्रिया त्वचा (चर्म) पर स्नेहन द्रव्य की मालिश त्वचा के छिद्रों द्वारा स्निग्धता स्नायु—मण्डल तक पहुँचाना। तीसरी क्रिया नस्य अथवा शिरोवस्ति द्वारा स्नेहन द्रव्य नाक व मस्तिष्क के रूक्ष स्नायु—मण्डलों में पहुँचाकर, उन्हें स्निग्ध करना। चौथी क्रिया अभ्यञ्जना द्वारा नेत्रों को और गुदा, शिश्न, (लिंगेन्द्रिय) आदि को स्निग्ध करना। पाँचवी क्रिया गण्डूष (कुल्ला) द्वारा गले व मुख को स्निग्धता प्रदान करना। छटी क्रिया स्नेहन द्रव्यों के द्वारा मस्तिष्क, कान आदि को स्निग्ध करना।

स्नेहपान रूक्ष प्रकृति के व्यक्तियों के लिये ही हितकर है। वृद्ध, बाल, कृश, धातु-क्षीण, हीन वीर्य, वात रोगी, तिमिर रोगी और क्रूर-कोष्ट (मल बद्धता) वाले के लिए उत्तम है। जिनका शरीप स्नेह युक्त और पुष्ट है, उन्हें स्नेहपान कराना ठीक नहीं है। परन्तु वाजीकरण और रसायन औषधियों

www.44Books.com 

का सेवन कराना हो तो वमन-विरेचन से पूर्व स्नेहन और स्वेदन करना आवश्यक है।

**स्नेहन का कार्य**—शरीर के अभ्यन्तर रोग-मार्ग, बाह्य रोग-मार्ग अथवा मध्यम रोग-मार्ग—इनमें से किसी भी रोग–मार्ग के अन्दर जमा हुए दूषित मल और विचारों तक स्नेह जा पहुँचता है। ये दूषित द्रव्य अथवा विकार बहुत सूक्ष्म होते हैं। इन पर किसी भी औषधि का सीधा, प्रत्यक्ष असर एक दम पहुँचना कठिन होता है। अन्दर के गहन मार्गों (नस और नाड़ियों) में दृढ़ता के साथ चिपटकर बैठे हुए इन दोषों को या दूषित द्रव्यों को प्रथम क्लिन करने (भिगोने) तथा उन्हें अपने स्थान से विचलित करने का प्रयत्न करना ही शारीरिक-सुरक्षा की दृष्टि से हितकारी होता है। इस तात्विक दृष्टि को सामने रखते हुए ही किसी भी शोधन कर्म के पूर्व स्नेहन की विधि की जाती है। यदि इस प्रकार स्नेहन की क्रिया द्वारा उनको क्लिन (नर्म) न किया जाय ओर वैसे ही हटाने की चेष्टा की जाय, तो जिन सूक्ष्म अवयवों में वे चिपटे बैठे हैं उनका भी नष्ट हो जाना सम्भव है, और इन अवयवों का नाश होने से शरीर खतरे में पड़ सकता है। स्नेहन इस खतरे से बचाता है, शरीर में तेज या क्रान्ति पैदा करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है, धातुओं को पुष्टकर देह में दृढ़ता एवं शक्ति पैदा करता है। 'भाव प्रकाश' में कहा है—

दीप्ताग्निः शुद्ध कोष्ठश्च पुष्ट धातुर्दृढेन्द्रियः ।
निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवान्नरः ॥

**स्नेह के चार कर्म**—घृत, मज्जा, मेद और तेल, ये चार पदार्थ स्नेहन-कर्म के उपयोग में लाये जा सकते हैं। इनमें दो भेद होते हैं—स्थावर और जंगम। वनस्पतियों से प्राप्त सब प्रकार के तेल स्थावर माने जाते हैं ओर प्राणियों से प्राप्त चिकने पदार्थ जंगम। वनस्पति जन्य पदार्थों में अण्डी (एरण्ड) और सरसों तथा तिल का तेल उत्तम माने गये हैं। और प्राणिज पदार्थों में घृत सर्वश्रेष्ठ है। चिकित्सा की दृष्टि से इन्हीं

www.44Books.com


दो स्नेहों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। शेष पदार्थों का उपयोग विशेष रोगों की विशेष अवस्था में करने का ही विधान है—

(१) बुद्धि, मेधा और स्मृति शक्ति की कामना वालों को तथा हीन वीर्य वाले को घृतपान करना चाहिये।

(२) वात रोगी, अस्थि रोगी, कृमि रोगी, मेद रोगी, कफ रोगियों को तैलपान करना चाहिये। क्रूर कोष्ठ वाले को तैल का पान बहुत लाभकारी होता है।

(३) परिश्रम और स्त्री-प्रसंग से थके व्यक्ति को मेद मज्जा का पान हितकारी होता है।

(४) अग्नि से जले, चोट खाये हुए, सन्धि, अस्थि और मर्म स्थान की पीड़ा वाले को भी मेद का सेवन लाभदायक है।

**ऋतु अनुसार स्नेहपान**—ग्रीष्म ऋतु में रात्रि के समय घृतपान करना चाहिये। हेमन्त और शिशिर में निर्मल आकाश रहने पर तैल का प्रयोग करना चाहिये। श्रावण, कार्तिक और वसन्त में वात-पित्त कफ के शमन के लिए स्नेह द्रव्यों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार का स्नेहन वायु को नष्ट करता है, देह को नर्म रखता है और मलावरोध को दूर करता है।

**स्नेहन की अवधि और मात्रा**—मृदु कोष्ठ वाले को तीन दिन तक लघुमात्रा ( २॥ तोला से ५ तोला ) दें, मध्य कोष्ठ वाले को ५ दिन तक मध्य-मात्रा ( ५ तोला से १० तोला तक ) दें और क्रूर-कोष्ठ वाले को सात दिन तक उत्तम मात्रा ( १० तोला से १५ तोला ) दें। साधारण स्थिति में तीन दिन से कम और सात दिन से अधिक स्नेह-पान कराने की आज्ञा शास्त्रों में नहीं है। क्योंकि सात दिन के बाद भी यदि स्नेह-पान जारी रखा जायगा तो उसका औषधि जैसा प्रभाव जाता रहेगा और वह आहार की भाँति भोजन का एक अंश बन जायगा।

स्नेहन का प्रयोग प्रायः शोधन शमन और वृंहण ( पुष्टि ) के लिये होता है। शोधन के स्नेहन का प्रयोग प्रातः काल में भोजन जीर्ण

www.44Books.com 

हो चुकने पर, परन्तु क्षुधा चैतन्य होने के पूर्व करना चाहिये, क्योंकि क्षुधा चैतन्य होने पर स्नेहपान करने से स्नेह का जठराग्नि द्वारा पाचन हो जाने का भय रहता है। पचा हुआ स्नेह शोधन क्रिया के लिये उपयोगी नहीं होता।

दोष-शमन के लिये स्नेहपान क्षुधा के चैतन्य हो जाने पर करना चाहिये, क्योंकि बिना क्षुधा के स्नेह का पाचन नहीं होता और बिना पचे स्नेह सारे शरीर में व्याप्त न हो सकने के कारण दोषों का शमन करने में समर्थ नहीं हो सकता बृंहण के लिये स्नेहपान लघु मात्रा में और भोजन के पदार्थों के साथ मिलाकर करना चाहिये।

वाताधिक्य में लवणयुक्त घृत, पित्ताधिक्य में केवल विशुद्ध घृत और कफ में त्रिकुट मिला हुआ घृतपान कराना चाहिये। घृत जहाँ तक मिल सके गाय के दूध से निकाला हुआ ही हो। घृत को हमेशा कुनकुना ही पिलाना चाहिये। घृत पीने के बाद गर्म जल, गर्म पेय, और कुछ गर्म भोज्य पदार्थों को, जो पाचक और लघु हों, सेवन करना चाहिये। स्नेह जीर्ण हो जाने के बाद ही गरम पथ्य तथा गरम पेय लेना उचित है। स्नेहपान के बाद पथ्य के लिये मूँग का यूष (गाढ़ा जूस) शाली चावल अथवा सांवा का चावल और अन्य पचने में हलके भोज्य पदार्थ लेना चाहिये।

सम्यक स्नेहन के लक्षण—यथाविधि और उपयुक्त मात्रा में स्नेह-पान कराने पर रोगी के शरीर की अपान और समान वायु अनुलोम हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है और मल चिकना और ढीला हो जाता है। अंगों में मृदुता तथा स्निग्धता आ जाती है। स्नेह का उद्वेग सा होने पर कभी-कभी ग्लानि सी प्रतीत होती है, परन्तु सारा अंग हल्का और इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं।

पर यदि स्नेह-पान अनुचित मात्रा में और अनुचित रीति से हुआ तो उसके फल स्वरूप शोथ, अर्श, तन्द्रा स्तम्भ, संज्ञानाशक, कण्डु, कुष्ठ, ज्वर, भ्रम आदि विकार प्रकट होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में पहले शोधन

www.44Books.com 

कराना चाहिये, और जब उससे काम चलता न दीखे तो वमन विरेचन करानी चाहिये। त्रिफला, मधु, गौमूत्र, हर्र आदि का समुचित मात्रा में सेवन करना लाभदायक है।

विविध तैलों का प्रयोग—घृत के अतिरिक्त एरण्ड (अण्डी या रेंडी) का तेल मलावरोध के लिये सर्वोत्कृष्ट माना गया है और डाक्टर सदा से इसका व्यवहार करते आये हैं। बड़ी उम्र वालों को २॥ तोला से ५ तोला तक और बच्चों को आयु के अनुसार १ चम्मच से ४ चम्मच तक सुबह के समय कुनकुने पानी के साथ पिलाना चाहिये। इससे स्नेहन के साथ ही रुका हुआ मल भी आसानी से निकल जाता है।

सब प्रकार के बात रोगों के लिये सरसों का तेल एक सेर और पिसा हुआ लहसुन १ पाव मिलाकर अग्नि पर पकावे। फिर छानकर उसमें २॥ तोला सेंधा नोंन मिला लें इस प्रकार बना हुआ तेल शरीर में मालिश के काम आता है और लकवा, ग्रध्रसी, सन्धि बात में मालिश करने के उपयोगी हैं।

तिल के तेल से बने हुये नारायण तैल, महानारायण तैल, विष गर्भ तैल, माष तैल भी स्नेहन में मालिश के काम में लाये जाते हैं।

## दोषों को द्रवीभूत करने वाला स्वेदन–कर्म

शरीर के शोधन तथा रोग शमन के लिये स्नेहन के साथ स्वेदन भी आवश्वक माना गया है। विशेषतः वात-कफात्मक रोगों के लिये तो स्वेदन क्रिया बहुत ही आशु गुणकारी है। वात कफ व्याधि में स्निग्ध स्वेदन करना चाहिये। अण्डकोश, हृदय और नेत्रों का स्वेदन करना उचित नहीं है।

चरकाचार्य ने स्वेदन विधि के १३ भेद बतलाये हैं—शङ्कर, प्रस्वर, नाड़ी, परिषेक, अवगाहन, जेंताक, अश्मधन, कर्पू, कुटी, भू, कुम्भी, कूप होलाक। परन्तु ये समस्त विधियाँ सम्भवतः चार भागों में विभक्त की जा सकती हैं:—

www.44Books.com 

(१) ताप (२) उपनाह (३) द्रव (४) उष्म ।

(१) ताप स्नेह—शरीर को दूर से गरमी पहुंचाकरस स्नेह निकालना ताप स्नेह है, जैसे कमरे में आग रखकर उसे गर्म कर देना कि उसमें सोने से पसीना निकलने लगे। अथवा खाट के नीचे आग रखकर लेट जाये और ऊपर से कम्बल ओढ़ ले तो ऊपर नीचे से ताप पहुँचेगा और स्वेद निकलने लगेगा। चरक में कहे गये जेन्ताक स्वेद, कुटि स्वेद, कूद स्वेद, होलाक स्वेद इसी 'तापस्वेद' के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि इन स्वेदों में निर्धूम अग्नि द्वारा नाना विधियों से शरीर को दूर रखकर ताप पहुंचाया जाता है।

(२) उपनाह स्वेद—औषधियों के गरम लेप द्वारा शरीर को ताप पहुँचाकर रोग शमन करने की क्रिया का नाम उपनाह-स्वेद है। औषधियों की गरम पोटलियों द्वारा व पुलटिस द्वारा शरीर को सेक पहुँचाना भी उपनाह स्वेद है। उपनाह स्वेद में शरीर को उष्णता प्रदान करने वाले पदार्थ व लेप शरीर से दूर नहीं रखे जाते। उन्हें शरीर छुआना आवश्यक होता है। इस स्वेद के अंतर्गत अश्मधन-स्वेद, भू-स्वेद, पिण्ड-स्वेद, प्रस्तर स्वेद, शङ्कर स्वेद आदि आ जाते हैं। आजकल की पुलटिस भी उपनाह स्वेद का ही भेद है।

(३) द्रव स्वेद—गरम तैल व औषधियों के गरम काढ़े से अभिषेक तथा अवगाह करना द्रव स्वेद कहलाता है। पीड़ित अङ्ग पर गरम तैल अथवा काढ़े को बारीक धार से डालना अभिषेक कहा जाता है और काढ़े से भरे टब में बैठना अवगाह कहा जाता है।

(४) उष्म स्वेद—इसको वाष्प स्वेद भी कह सकते हैं। औषधियों की गरम भाफ से अथवा पत्थर या लौह खण्ड को गरम कर उसे बुझाकर, उसके वाष्प से स्वेदन करना उष्म स्वेद कहलाता है।

इनके सिवाय स्वेदन की और क्रिया हैं। दण्ड बैटक या अन्य व्यायाम और परिश्रम द्वारा स्वेद निकालना व्यामाम स्वेद कहलाता है। गरम कपड़ा ओढ़ कर या पहिन कर पसीना निकालना वस्त्र स्वेद

www.44Books.com


कहलाता है। सूर्य-ताप में वैठकर स्वेद निकालना आतप स्वेद कहलाता है।

स्वेदन के चार भेद और भी हैं ( १ ) शरीर के किसी एक ही अंग में पसीना लाना 'एकाङ्ग स्वेद' कहलाता है। समूचे शरीर की स्वेदन क्रिया को 'सर्वाङ्ग स्वेद' कहा जाता है। गरम वातरोग नाशक तैलों से अथवा स्नेह मिश्रित काढ़ों अभिषेक से या अवगाह करना 'स्नेह स्वेद' कहलाता है। स्नेह रहित उपनाह, ताप तथा द्रव स्वेद को 'रूक्ष-स्वेद' कहते हैं।

उपनाह स्वेदन की क्रिया— ( १ ) बालू की पोटली द्वारा सेक— बालू की दो पोटली बनाकर चूल्हे या सिगड़ी पर रखे गरम तवे पर रख दें जब पोटली खूब गरम हो जाय तब पीड़ित स्थान पर वात नाशक तैलों का लेप कर इन बालू की पोटलियों से सेक करे। इससे ग्रंथि-शोथ, बिना मवाद का व्रणशोथ बिना पके बैठ जाता है। ( भूसी का सेक)—धान की तथा गेहूँ की गरम भूसी से गरम रेत की पोटली की भाँति वात नाशक तैल लगा कर पीड़ित अंग को सेका जाता है। ( ३ ) बोतल का सेक—उबलता पानी रबर की थैली या काँच की मोटी बोतल में भर कर पीड़ित अंग पर वात नाशक तैल लगा कर सेका जाता है। इस प्रकार का सेक उदर शूल पर विशेष लाभप्रद होता है। ( ४ ) भात का सेक—गरम-गरम भात में थोड़ा सा घी मिला कर साफ कपड़े में बाँध लें। फिर उस पोटली से अभिष्यन्द आदि नेत्र रोगों में आँख की पलकें बन्द करके सेक करें। इससे नेत्र पीड़ा अवश्य दूर होती है। ( ५ ) ( पुलटिस का सेक) अलसी का चूर्ण, राई, आटा, हल्दी आदि में से किसी एक को जल में पकाकर, पीड़ित अंग पर गरम गरम लेप कर ऊपर से गरम कपड़ा लपेट देते हैं। अथवा कपड़े पर लेप लगा कर पीड़ित अंग पर पुलटिस की पट्टी बाँध देते हैं। इस प्रकार की पुलटिस पसली का दर्द, संधि वात ( जोड़ का दर्द ) निमोनिया, चोट, मोच, व्रण शोथ में लाभप्रद है। ( ६ ) भैंस के गोबर की पुलटिस—

www.44Books.com


गोबर को एक कढ़ाई में खूब गरम करके एक मोटे वस्त्र पर फैलाकर पीड़ित स्थान पर बाँध दे। यह पुलटिस कांटे से भिदे शोथ युक्त पीड़ा पर अथवा चोट से उत्पन्न व्रण-शोथ पर बहुत लाभप्रद है।

द्रव-स्वेद की क्रिया—इस स्वेद के लिये रोगानुसार औषधि की कल्पना की जा सकती है। परन्तु द्रव स्वेदन की क्रिया प्रातः वात या वात-कफ जनित पीड़ा को दूर करने को की जाती है। तदनुसार निम्न औषधियाँ उपयोग में लाई जा सकती हैं।

( १ ) संधि वात, एकाङ्ग पक्षाघात, गृध्रसी, खंज पंगु आदि वात रोगों में महानारायण, महा विषगर्भ, महामाष तैलों में से किसी एक का उष्ण परिषेक या अवगाह अत्यन्त लाभ जनक हैं। इन्हीं तैलों से पीड़ित स्थान को सिक्त कर उष्ण स्वेदन क्रिया द्वारा पसीना निकालने में दोषों का शोधन और शमन दोनों एक साथ हो जाता है।

( २ ) वात नाशक परिषेक वात से या चोट से पीड़ित अंग को वात नाशक सिद्ध तैलों से तर करके उस पर तारपीन का तैल मिला हुआ गरम जल बारीक धार से छोड़े। इस क्रिया से शीघ्र लाभ होता है, इसी प्रकार रास्ना का गरम क्वाथ, मूली का गरम स्वरस या पुनर्नवा का गरम स्वरस आदि से भी परिषेक किया जाता है।

( ३ ) वात नाशक अवगाह—सरसों का तैल १ सेर, तारपीन का तैल एक सेर, पीली काटसरैया, पंचमूल, सौंठ, रास्ना इन चारों औषधियों का क्वाथ चार सेर। ऊपर लिखे तैलों और क्वाथ को एक टब में भर कर रोगी को उसमें बैठा दें। अथवा रोगी के पीड़ित अंग को उसमें डुबा दें अवगाह-स्वेदन से वात रोग बहुत शीघ्र शांत होते हैं? इन्हीं द्रवों से परिषेक भी किया जा सकता है। इस प्रकार का स्वेदन मध्याह्न के समय करना उचित है

उष्म स्वेद की क्रिया-(१) समान वेदना में खौलते हुए पानी में तारपीन तैल मिलाकर उसमें फलालैन का कपड़ा भिगोकर उसे निचोड़ लें फिर उस गरम फलालैन से पीड़ित अंग को सेकें। इस सेक से

www.44Books.com


फलालैन के पानी की गरम भाप निकल कर पीणित स्थान को सेकती है। इसी प्रकार उबलते पानी में पोस्त के दाने डालकर सेका जाता है। ( २ ) कुम्भी स्वेद—हरड़, हल्दी अमृत, नारंगी, गिलोय, दारू हल्दी, सोंठ, चित्रक और पुनर्नवा को समान भाग लेकर काढ़ा बनावे और उसे खौलती हुई दशा में एक चौड़े पात्र में भर कर रस्सी से बुनी खाट के नीचे रखदें। खाट पर एक पतली चद्दर बिछा कर रोगी को लिटा दें और ऊपर से कम्बल से ढक दें। ऐसी स्थिति में काढ़े की भाप रोगी के शरीर को स्पर्श करके खूब पसीना लायेगी, जिससे शरीर के रोगों का शमन और शोधन दोनों होगा।

इसी प्रकार बात नाशक अवगाह में वर्णित गरम क्वाथ के वाष्प द्वारा स्वेदन करना चाहिये, शोथ और आम वात में कुम्भी स्वेद करते समय शरीर में तैल लगाना आवश्यक नहीं है, क्योंकि ये दोनों श्लेष प्रधान व्याधि हैं। परन्तु वात व्याधि में वाष्प द्वारा शोधन करते समय वात नाशक तैल द्वारा पीड़ित अङ्ग को स्निग्ध कर देना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा रूक्षता बढ़ कर कोई न कोई उपद्रव खड़ा हो जायगा।

नाड़ी-स्वेद—बात व्याधि में तथा आम वात में वर्णित औषधियों के काढ़ों को अथवा गौमूत्र अथवा दूध को एक पात्र में डालकर उबालें, जिसके मुँह में टोंटीदार ढक्कन लगा हो। उसमें एक नली लगाकर वाष्प को बाहर निकालें और जिस अङ्ग में पीड़ा हो उसी का स्वेदन करें। इस क्रिया में भी आम बात में रूक्ष और बात-व्याधि में स्नेहयुक्त स्वेदन करने का ध्यान रखना चाहिये। नाड़ी-स्वेद के समय पीड़ित अङ्ग को मोटे वस्त्र से ढक देना चाहिये अन्यथा खाल में फफोले पड़ जाने का भय रहता है।

## श्लेष्मा के निस्सरण को वमन-कर्म

स्वेदन-कर्म द्वारा शरीर में स्थिति दोष अथवा विजातीय द्रव्य ढीले होकर स्रोतों दिवालों को छोड़ देते हैं, स्वेदन-कर्म द्वारा ये ही दोष द्रवी

www.44Books.com


भूत होकर कोष्ठ में आकर एकत्रित होते हैं। फिर इन दोषों को यथा-विधि वमन विरेचन द्वारा शरीर से बाहर निकाला जाता है। कफ-रोग में और वात-कफ जनित व्याधियों में वमन द्वारा ही दोषों का शोधन करना चाहिये। पित्त कफ जाति व्याधि में वमन और विरेचन दोनों करना हितकर है। पित्त-प्रधान और वात प्रधान व्याधि में विरे-चन द्वारा शोधन करना लाभदायक है। साधारणतः शरीर शोधन के लिए वमन के बाद ही विरेचन की आज्ञा शास्त्रों में मिलती है।

वमन, विरेचन और वस्ति ये तीनों कर्म दोषानुवर्ती है। कफ का स्थान वक्षस्थल होने से कफ जन्य विकारों पर वमन कर्म ही अधिक प्रभावशाली होता है। पित्त का स्थान छोटी आंतों में होने से उन पर विरेचन का प्रभाव अधिक पड़ता है। और वात का स्थान पक्वाशय में होने से वात जन्य विकारों के लिए वस्ति कर्म ही लाभकारी होता है। इस प्रकार इन तीनों दोषों के अनुसार ये तीनों कर्म किये जाते हैं। इन तीनों कर्मों में सर्व प्रथम स्थान वमन को किस कारण दिया गया और विरेचन तथा वस्ति को उसके बाहर क्यों रक्खा गया इसमें एक विशेष कारण है, जिसमे आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों का अपूर्व ज्ञान प्रकट होता है।

खाया हुआ आहार जब आमाशय में क्लेदक कफ फेन जैसा हो जाता है, तब यदि आहार में स्निग्ध, मधुर आदि पदार्थों की अधि-कता हो, तो यह क्लेदित कफ की क्रिया और भी अधिकता के साथ होती है और अन्न-रस में कफ का प्रमाण आवश्यकता से कहीं अधिक बढ़ जाता है, जब यह अन्न-रस लघु आंतों में होकर शरीर की सूक्ष्म रस वाहिनी नसों द्वारा संचारित होने लगता है, तब उसमें कफ प्रमाण अधिक ही रहता है। यह कफ युक्त रस जब रक्त और अन्य धातुओं में रूपान्तर होता है तब भी उसमें कफ की अधिकता का संस्कार बना रहता है। इस प्रकार प्रथम आहार द्वारा बढ़ा हुआ यह कफ क्रमशः समस्त शरीर में व्याप्त होकर कफ विकारों को उत्पन्न करता है। वह प्रमाण

www.44Books.com


में जैसे—जैसे बढ़ता जाता है वैसे—वैसे कफ—स्थानों के अतिरिक्त अन्य दोषों पित्त और वात के स्थानों को भी दूषित करता है । इस कारण अगर विरेचन द्वारा पित्त का स्थान और वस्ति द्वारा बात का स्थान शुद्ध कर भी दिया जाय, तो यह बढ़ा हुआ कफ पुनः उनमें प्रवेश करके उनको दूषित बना देता है । अतः उसके मूल को ही बन्द कर देने के अभिप्राय से पूर्वाचार्यों ने वस्ति की अपेक्षा वमन को ही प्रथम स्थान दिया है ।

कफ स्थान के लिये बिल्कुल समीप का मार्ग मुख द्वार होने से वमन—क्रिया द्वारा तत्काल कफ का निवारण हो सकता है । स्नेहन और स्वेदन क्रिया द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर के कल पुर्जों में चिपटा हुआ यह दूषित कफ जब पतला होकर स्वस्थान में आता है, तब तीव्र और तीक्ष्ण वामक औषधियाँ द्वारा वह मुख द्वार से निकलने लगता है । ये औषधियाँ अपने प्रभाव से वमन के साथ ही उस दूषित कफ को उसके स्थान से खींच लिया करती हैं । इसी से बार-बार वमन वेग से आते हैं और कफ बाहर निकलता जाता है । आमाशय, हृदय और फेफड़ों की शुद्धि हो जाती है । शरीर हल्का होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो उठती है ।

**वमन कराने का समय**—वमन और विरेचन दोनों कर्म प्रत्येक ऋतु के संधि काल में कराना उत्तम होता है, क्योंकि दोषों का प्रकोप ऋतुओं के संधिकाल में विशेष रूप से होता है । सामान्यतः वसन्त, वर्षा और शरद ऋतुएँ वमन विरेचन के उपयुक्त बतलाई गई हैं ।

वमन कराने के पूर्व रोगी को स्नेहयुक्त यवागू ( जौ का जूस ) तथा दूध भर पेट पिला देना चाहिए और फिर इन द्रव्यों का पाचन होने के पूर्व ही वमनकारी औषधियों का प्रयोग करना चाहिए । यदि वमन उपयुक्त रूप में हो जायगा तो रोगी का हृदय, कण्ठ और मस्तिष्क शुद्ध और हल्का मालूम होने लगेगा । जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है ।

www.44Books.com 

दूषित कफ पित्त का विनाश होने से उनके द्वारा उत्पन्न व्याधियों का वेग कम हो जाता है और शरीर हलका मालूम होने लगता है।

आवश्यकता से अधिक वमन न होने पाये इसका ध्यान रखना चाहिए। अधिक वमन होने से मुँह से रक्त गिरने लगता है, कंठ सूखना, नेत्र रोग, भ्रम तथा वात-विकार उत्पन्न हो जाते हैं। वमन का अतियोग हो जाने पर तुरन्त पित्त नाशक उपाय करना चाहिए। मूँग शाली अथवा सावां का यूष ( पतला जूस ) पिलाना चाहिए। यही पथ्य उचित वमन होने पर भी दिया जाता है।

यदि वमन यथार्थ रूप से न हुआ हो और वमन रुकने में दोष भी कोठे में रुके हों तो आमला और सरसों के काढ़े में नमक मिलाकर पिलाना चाहिए अथवा तीव्र वामक औषधि देनी चाहिए। औषधि देने के बाद वमन की प्रवृत्ति न होने पर कण्डु, ज्वर, मुख से लार गिराना आदि व्याधि हो जाती हैं। ऐसी हालत में विरेचन कराना हितकारी है।

**वमन के लिये औषधियां**—वमन कराने की औषधियों में सर्वश्रेष्ठ मैनफल है। 'वाग्भट्ट' में लिखा है कि "वमने मदने श्रेष्ठो।" अनुभव में भी यही बात सत्य मालूम होती है। इसलिये वमन के लिये साधारणतः निम्न प्रयोग उत्तम रहता है—मैनफल के बीजों का कल्प २ तोला और मुलहठी का ( चौथाई बनाया ) काढ़ा ४० तोला दोनों को मिला दें। फिर उसमें १० तोला शहद और २ तोला नमक शामिल कर दें। यही वमन की औषधि है। शोधन-कर्म की इच्छा वाले रोगी को स्वेदन कर्म हो जाने के बाद मैनफल का उपर्युक्त कल्प सेवन कराना चाहिए। इसको देने के पहले घृत मिश्रित यवागू पेट भर कर पिलादे। तब रोगी का बलाबल देखकर अथवा आयु के अनुसार लघु ( १० तोला ) मध्य ( २० तोला ), उत्तम ( ४० तोला ) की मात्रा में वमन की यह औषधि देनी चाहिए। वमस-कर्म समुचित रूप से सम्पन्न हो जाने के बाद रोगी को सावां तथा शाली की गरम-गरम खीर धीरे-धीरे पिलानी चाहिए।

www.44Books.com


अन्य प्रयोग—( १ ) पीपल, मैनफल, सेंधा नमक, ये तीनों वस्तु एक-एक तोला लेकर महीन चूर्ण कर ले। फिर इस चूर्ण को २० तोला गरम जल तथा ५ तोला शहद के साथ मिला कर ऊपर लिखी विधि से रोगी को सेवन करावे। ( २ ) कफ पित्त जनित व्यधियों में मैनफल का चूर्ण एक तोला से २ तोला तक २० तोला से ४० तोला तक गाय के दूध में घोलकर ऊपर लिखी विधि से पिलाना चाहिए। ( ३ ) अजीर्ण रोग में २॥ तोला सेंधा नमक को २० तोला गरम जल में घोल कर पिलाना चाहिए। ( ४ ) कफ को जीतने के लिये मैनफल के चूर्ण को कड़वे, भर पेट और गरम पदार्थों के काढ़े में सेवन करावें। ( ५ ) पित्त को जीतने के लिए मैनफल के चूर्ण को स्वादिष्ट पदार्थों के क्वथ में घोलकर पिलाना चाहिए। ( ६ ) वात-कफ को जीतने के लिये मैनफल के चूर्ण को स्वादिष्ट नमकीन, अम्ल तथा अन्य गरम औषधियों के काढ़े में पिलाना चाहिए। ( ७ ) देवलाली या बन्दाल ( जीमूत ) के फल जब तक पक कर सूख जाव तथा उनकी चूर्ण अल्प (६ माशा) मध्य (१ तोला) उत्तम (२ तोला) लेकर क्रमशः १ पाव या २ पाव गाय के दूध में डालकर पकावें और कुनकुना रोगी को पिलाव। ( ८ ) कड़वी तुम्बी का स्वरस १ छटांक और गाय का दूध तीन छटांक मिला कर पकावें। जब दूध मात्रा शेष रह जाय तो कुनकुना रोगी को पिलावें। यह कफ रोग, प्रतिश्याय और स्वर-भङ्ग में लाभप्रद है। ( ९ ) कड़वी तोरई के फूल फल और बीजों का कल्प गाय के दूध में पकाकर सेवन करावें। यह गल रोग, विष-दोष, गुल्म, उदर रोग, कास, बात और कफ के रोगों में हितकारी है। ( १० ) जो रोगी मैनफल और कड़वी तुम्बी आदि के प्रयोग को सहन नहीं कर सकते उन्हें कुटज ( कड़वा इन्द्र जौ ) का चूर्ण १ तोला से २ तोला तक, नीम की छाल के १० तोला काढ़े में घोलकर पिलाना चाहिए।

## पित्ताशय की शुद्धि के लिये विरेचन--कर्म

वमन द्वारा कफ का शोधन करने के पश्चात् विरेचन द्वारा पित्त

का शोधन आवश्यक होता है। पित्त कर पदार्थों के खाने से पित्त-रस का अधिक उत्पादन न होकर वह छोटी आँतों में पाचक-रस में जाकर मिल जाता है। वहाँ से यह समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है और अनेक प्रकार के पित्त-जनक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। उस पित्त का शोधन करने के लिये छोटी आँतों में ही उसका प्रतिबन्ध करना पड़ता है। यद्यपि यह दूषित पित्त मल द्वार द्वारा ही निकलता है, पर वस्ति द्वारा उसे इसलिए ठीक नहीं किया जा सकता, क्योंकि वस्ति की पहुँच बड़ी आंत तक ही होती है, लघु आँतों तक वह नहीं पहुँचती। इसलिये स्नेहन और स्वेदन द्वारा लघु आँतों में एकत्रित पित्त को विरेचन द्वारा निकालना ही आवश्यक होता है।

इस प्रकार आमाशय के नीचे पक्वाशय, मलाशय और वस्ति के दोष विरेचन से दूर हो जाते हैं। यूनानी चिकित्सा ( हिकमत ) में इसके लिये जुल्लाव देने का विधान है। वे प्रथम मुंजिस देते हैं ओर घी खिचड़ी खिलाते हैं। खिचड़ी और घृत खाने से कुछ स्निग्धता अवश्य आती है और मुंजिस से मल कुछ फूलता है, पर जो प्रभाव आयुर्वेद के स्नेहन और स्वेदन कर्म का है वह मुंजिस से हरगिज प्राप्त नहीं हो सकता। आयुर्वेद पद्धति में यदि स्नेहन स्वेदन और वमन के पश्चात् विरेचन कर्म यदि यथाविधि न कराया जाय तो संग्रहणी, प्रवाहिका, मन्दाग्नि, शरीर में जड़ता आदि विकार हो जाते हैं। 'शारङ्गधर संहिता' में लिखा है—

स्निग्ध स्विन्नस्य वांतस्य दधात्सम्यग्विरेचनाम्।
अवांतस्य त्वधः स्त्रस्तो ग्रहणी छादयेत कफः
मन्दाग्नि गौरवं कुर्याज्जिनयेद्वा प्रवाहिकाम्॥

विरेचन के लिये औषधि का निश्चय करते समय मृदु, मध्य तथा क्रूर कोष्ठ का विरेचन अत्यन्त आवश्यक है। बिना कोष्ठ विवेचन के विवेचन औषधि का प्रयोग खतरे से खाली नहीं है। पित्त प्रकृति के रोगी का कोष्ठ मृदु होता है, कफ प्रकृति के रोगी का मध्य और वात प्रकृति के रोगी का क्रूर कोष्ठ होता है। मृदु कोष्ठ वाले को गरम दूध

www.44Books.com


ही जुलाब का काम देता है। मध्य कोष्ठ वाले को भी मृदु विरेचन से ही काम चल जाता है। केवल क्रूर कोष्ठ वाले को ही तीव्र विरेचन की आवश्यकता होती है। इसलिये मृदु, मध्य और क्रूर कोष्ठ के अनुसार विरेचन औषधि की क्रमशः अल्प, मध्य तथा तीव्र मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। साथ ही मृदु, मध्य तथा तीव्र विरेचन औषधि की व्यवस्था करनी चाहिये। कोष्ठानुसार औषधि और मात्रा का उचित निर्णय किये बिना यदि विरेचन औषधि का प्रयोग किया गया तो विरेचन का अतियोग अथवा हीन योग होने का भय रहता है।

## विरेचन के पूर्व तिक्त घृत-पान की आवश्यकता—

विरेचन-कर्म में एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि विरेचनीय औषधि के प्रभाव से शरीर की धातुओं में मिला हुआ जल-तत्व खिंचकर दस्त के साथ मिलकर निकला करता है। उसी के साथ बढ़ा हुआ पित्त भी निकलता है। पर अनेक बार शरीर के लिये आवश्यक पित्त और अन्य पदार्थ भी उन्हीं में मिल कर निकल जाते हैं, जिससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इस खतरे को मिटाने के लिये आयुर्वेद में यह व्यवस्था की गई है कि किसी तिक्त पदार्थ से संस्कारित घृत विरेचन के पहले पिला दिया जाय। यह घृत पित्त के दूषित अंश को अन्य शारीरिक द्रव्यों से अलग कर देता है और केवल उसी को दस्त के साथ बाहर निकालता है।

**विरेचन योग्य समय**—विरेचन कर्म के लिए शरद ऋतु सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। यद्यपि वर्षा ऋतु में भी पित्त का संचय होता है, पर उस समय आर्द्रतायुक्त वायु के कारण उसकी यथा योग्य वृद्धि नहीं हो पाती। अर्थात् विरेचनीय औषधि के प्रभाव से अनायास ही खिंचकर आने के लिए उसकी जिस प्रमाण में वृद्धि होनी चाहिये उतनी नहीं हो पाती। अतः उस समय पित्त स्थान के शोधन का प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं होता और शरीर को अकारण कष्ट उठाना पड़ता है। पर शरद ऋतु के

www.44Books.com


प्रारम्भ में जैसे ही वाह्य वातावरण में फरक होता है वैसे ही पित्त के ऊपर का दबाब दूर होकर वह खुली अवस्था में यथा योग्य परिणाम में विरेचन द्वारा खिचकर बाहर निकल जाता है।

विरेचक औषधि देने की क्रिया—जिस दिन रेचक प्रयोग करना हो उसके पहले दिन रोगी को ऐसा शीघ्र हलका, उष्ण एवं स्निग्ध आहार देना चाहिए जो कफ को न बढ़ा सके। पीने के लिए गर्म पानी भी देवे। अन्न पचकर रात्रि में उत्तम निद्रा लेकर प्रातः उठे हुए उस रोगी को शौच, मुखमार्जन आदि नित्य कर्म हो जाने पर कुछ भी खाने या पीने को न देते हुए एक पहर दिन चढ़ आने पर योग्य अनुपान के साथ रेचक औषधि देनी चाहिये। उदाहरणार्थ—पित्त विशिष्ट विकार हो तो मधुर एवं कषैले रस युक्त पदार्थों के साथ; कफ प्रधान विकारों पर पीपल, मिर्च, गोमूत्रादि तिक्त रस युक्त पदार्थों के साथ; वात विकार हो तो सेंधा नमक, काला नमक आदि स्निग्ध एवं उष्ण वीर्य युक्त पदार्थों के साथ रेचक औषधि देना हितकारी होता है।

देखने में सुन्दर और रुचिकर औषधि उचित अनुपात के साथ सेवन कराने के बाद, उसके मुख पर शीतल जल के छींटे थोड़ी देर तक मारते रहने से उसे उबकाई या वमन न होने पावेगा। फिर चित्त शान्त होने पर गरम जल से कुल्ला करा, मुख स्वच्छ हो जाने पर, निर्वात स्थान पर मुलायम बिछौने पर बैठा या लिटा दें। नीबू के पत्ते का सुवास या अन्य रुचिकर सुवासित पदार्थ उसे सूँघने के लिए देवें। ऐसे समय में चित्त शान्ति की परम आवश्यकता होती है।

यथायोग्य समय पर (लगभग १॥ घन्टे बाद) दस्त का वेग आने पर तुरन्त ही शौच को जाना चाहिये। आये हुए वेग को न रोके और न वेग आने के लिए कोई चेष्टा करे। शौच के लिये दूर न जाया जाय और न किसी शीत पदार्थ का स्पर्श करे। दस्त का वेग ठीक-ठीक आने के लिये बीच बीच से थोड़ा-थोड़ा गर्म जल पीवे और पेट को नीचे की ओर

www.44Books.com


रवड़ की थैली में गर्म जल भर कर अथवा गर्म जल में कपड़ा भिगोकर और निचोड़ कर बार-बार सेकते रहें।

इतनी व्यवस्था करने पर भी यदि दस्त ठीक-ठीक न हों तो रोगी की शक्ति देखकर उसी दिन पुन: रेचक औषधि दे सकते हैं। किन्तु पहले दी गई औषधि जीर्ण हो गई है या नहीं इसमें शंका हो तो उस दिन उसे हलका अन्न खिलाकर दूसरे दिन योग्य प्रमाण में रेचन देवें। यदि ठीक-ठीक स्नेहन और स्वेदन न होने से रेचन में रुकावट होती हो तो १० दिन बाद पुन: स्नेहन और स्वेदन कर्म करके विरेचन करे। ध्यान रहे खासकर बहुत परदों में रहने वाली स्त्रियों को, हलके नौकरी पेशा वालों को, व्यापारियो को, अकाल में भोजन करने वालों को, अयोग्य विहार करने वालों को प्राय: धारण करने की आदत-सी पड़ जाती है। अत: उनके शरीर में वायु की विशेष प्रबलता होने से, रेचक औषधियाँ ठीक-ठीक कार्य नही करतीं। ऐसों को स्नेह-कर्म की विशेष प्रमाण में आवश्यकता होती है।

कोष्ठ के क्रूर या भारी होने अथवा जठराग्नि के तीक्ष्ण होने से भी, योग्य प्रमाण में दिया गया रेचक प्रयोग बेकाम हो जाता है। अर्थात् उसके द्वारा दस्तों की सफाई तो नहीं होती, प्रत्युत अन्दर के दोष स्वस्थान से चलित हो कोष्ठ में एकत्र हो जाते हैं। इससे वायु का अनुलोमन नहीं हो पाता, उदर शूल, अफरा आदि विकार होते हैं। ऐसी हालत में कोष्ठ को स्निग्ध कर (रोगी को कुछ भी खाने-पीने को न देते हुए) पुन: दुगने प्रमाण में रेचक औषधि देनी पड़ती है। जो लोग हमेशा ठण्डी चीजें—कोल्ड ड्रिंक, आइसक्रीम, बरफ का जल आदि का व्यवहार अधिक करते रहते हैं, उन्हें रेचन क्रिया ठीक-ठीक लागू नहीं होती। ऐसे व्यक्तियों को खूब अच्छी तरह स्नेहन-स्वेदन कराके प्रमाण से अधिक ही रेचन औषधि देनी पड़ती है।

ध्यान रहे कि विरेचन कराने वाले व्यक्ति के बल और रेचन औषधि के प्रमाण का अन्दाज लगा लेना बड़े अनुभव का कार्य है।

www.44Books.com 

चरक जी ने लिखा है—"बल व्यायाम शक्तया।" अर्थात् बल का अनुमान उसके व्यायाम ( हिलना-चलना आदि क्रिया ) से लगा लेवे। परन्तु ऐसा अन्दाज लगा लेना मामूली बात नहीं है। उदाहरण के लिए एक उदर रोगी का पेट बड़ा हो गया है, हाथ-पैरों में शोथ हो, जरा से चलने-फिरने से ही श्वास फूल उठता है, दो पग भी नहीं चल सकता हो। ऐसे रोगी को यदि दुर्बल मानकर रेचन न दिया जाय अथवा कोई मन्द शक्ति का रेचन दिया जाय तो रोगी और भी दुर्बल हो जायगा क्योंकि रेचक औषधि का प्रयोग भी अशक्ति को बढ़ाता है। अतः ऐसी स्थिति में केवल चलने फिरने से ही शक्ति का अनुभव न कर नाड़ी–परीक्षा, हृदय की गति के द्वारा बल का अनुमान कर दोषों के अत्यधिक संचय होने से, तीक्ष्ण रेचक ही कार्यकारी होता है।

तीक्ष्ण रेचक वह है, जिसके द्वारा मल और दोषों का, वगैर रुकावट एक दम निस्सरण हो जाता है, हृदय और मल द्वार में कोई पीड़ा नहीं होती, किसी प्रकार की ग्लानि न होते हुए जैसे-जैसे दस्त होते जाते हैं, वैसे-वैसे चैतन्यता प्राप्त होती जाती है। ऐसे रेचक के प्रभाव से, उदर रोग, पांडु, कामला आदि रोगग्रस्त रोगी भी शीघ्र रोगमुक्त होकर बलवान बन जाते हैं।

किन्तु यदि रोगी वास्तव में एक दम दुर्बल हो तो उसे तीक्ष्ण रेचक औषधि देना महा हानिकारक होता है। ऐसे कमजोर रोगी को या जिस पुरुष को पहले शरीर शोधनार्थ स्नेहन आदि का प्रयोग कराया जा चुका हो या जिसके प्रकुपित दोष प्रबल न हों, अथवा जो पुरुष दुबला हो और जिसके कोष्ठ की मृदुता या तीक्ष्णता का ज्ञान न हो उसको उसको मृदु विरेचक औषधि भी अल्प मात्रा में प्रयोग करनी चाहिये। चक्रदत्त में कहा है—

दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्प दोषः कृशो नरः।
अपरिज्ञात कोष्ठस्तु पिवेन्मृदूबल्यमौषधम् ॥

मृदु विरेचन का प्रयोग—निशोथ ४ भाग, मिश्री या खांड़ ४ भाग

www.44Books.com


और दाल चीनी- तेज पात, काली मिर्च इन तीनों का सम्मिलितचूर्ण १ भाग। इन सबका महीन चूर्ण कर २ से ६ माशे तक की मात्रा में शहद के साथ सेवन करावे

यदि पेय के रूप में मृदु विरेचन देना हो तो अमलतास का गूदा ५ तोला, सौंफ २ तोला, मुनक्का ६ तोला और गुलाब के फूल १॥ तोला— इनको जल मन्द अग्नि पर पकावे। आधा शेष रह रह जाने पर कुछ ठन्डा हो जाने पर उसे हाथों से खूब मले उसे झिन्नावस्त्र ( छिरछिरा वस्त्र जो मोटा और गाढ़ा न हो ) से छान कर काँच या पत्थर के पात्र में रखै। इसी में इमली का घोल छना हुआ लगभग ५ तोला तक मिला तथा कुछ शक्कर मिलाकर पिलावें। यह उत्तम स्वादिष्ठ पेय मृदु विरेचन का कार्य करता है। प्यास लगने पर अर्क गुलाब कुछ गर्म करके पिलाते रहें।

जब किसी व्यक्ति को मध्यम श्रेणी का विरेचन देना हो तो आमला, जवाखार, पीपल, बायविडंग समान भाग लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण से आधा भाग निशोथ का चूर्ण मिलावें। चूर्ण को खरल में डाल कर जीव करलें। इसे १ से २ तोला तक शहद और घृत के साथ सेवन करें। जिन व्यक्तियों को तीक्ष्ण विरेचन की आवश्यकता होवे इसमें लाल निसोथ के बजाय स्याम निसोथ मिलावें। आयुर्वेदोक्त नाराच रस की गोलियां भी तीक्ष्ण विरेचन के लिये उपयुक्त होती है।

## व्याधि विनाशक वस्ति-कर्म

जब अस्वाभाविक आहार विहार के कारण बढ़ा हुआ वायु अपने मल विसर्जन के कार्य को ठीक ढंग से नहीं करता तो उसमें अजीर्ण, अफरा, पेट में गुड़गुड़ाहट का शब्द होना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। वायु का कार्य गति रूप में होने से वायु की विकृति से स्नायुओं के कार्य में भी ढिलाई आ जाता है। इतना ही नहीं वात दुष्ट रस शरीर के अन्य अगों में नाना प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न कर देता है ।

www.44Books.com 

इसलिये दुष्ट वायु से उत्पन्न इन दोषों को दूर करने के लिये कर्म की आवश्यकता होती है।

वमन और विरेचन द्वारा क्रम से आमाशय और पित्ताशय की शुद्धि होती है और उनके नीचे के भागों ( पक्वाशय, मलाशय, मूत्राशय आदि ) की शुद्धि के लिये वस्ति कर्म विशेष प्रभावशाली है। आयुर्वेद के मतानुसार वस्ति का प्रयोग विशेष रूप से वात दोष के लिये माना गया है। शारीरिक सर्व रोगों में आधे से अधिक रोग वात-दोष से ही होते हैं। शाखागत, कोष्ठगत, मर्मगत, एवं ऊपरी सर्वाङ्ग में उत्पन्न होने वाले रोगों का मूल कारण वायु ही हैं। तथा मूत्र, मल, पित्त, मलाशयों की विकृति में हानिकारक वायु ही मुख्य है और इसे शमन करने के लिये वस्ति के समान अन्य कोई उपाय नहीं है। इसीलिए वस्ति को चिकित्सार्ध कहते हैं। चरक संहिता में कहा है—

'शाखा गताः·········तस्माच्चिकित्सार्द्धमिति।
श्रवन्ति सर्वां चिकित्सामपि वस्तिमेके॥

'सुश्रुत-संहिता में भी कहा गया है:—

"तत्र स्नेहादीनां कर्मणां वस्ति कर्म प्रधानतम माहुराचार्याः। कस्मादनेन कर्मत्वाद्वस्तेरिह वस्तिर्नाना विधि द्रव्य संयोगाद् दोषाणां संशोधन संशमन संग्रहणाति करोति······।"

अर्थात्—स्नेहन कर्म करने वाले सर्व विधानों में वस्ति कर्म ही प्रधान कर्म है क्योंकि वस्ति में अनेक औषधियों का संयोग कर दोषों का संशोधन, शमन और संग्रहण किया जा सकता है। वस्ति क्षीण-शुक्र वालों के लिये वाजीकरण का काम करती है, कृश को स्थूल और स्थूल को कृश करती है, नेत्रों की शक्ति बढ़ाती है, शरीर को सुदृढ़, बलवान बनाती है।

**'वस्ति' नामकरण की व्याख्या**—'वस्ति' शब्द का अर्थ मूत्राशय होता है बकरा या भेड़ का मूत्राशय १॥ बालिश्त लम्बा और १ बालिश्त चौड़ा होता है। आकार में लम्बा गोलाकार होता है, जिसमें लगभग १॥ या २ सेर

www.44Books.com


जल अथवा द्रव औषधि भरी जा सकती है। प्राचीन काल में गुदा द्वार से जो औषधि भीतर पहुंचाई जाती थी वह इसी बकरे के मूत्राशय या वस्ति में भर कर पहुंचाई जाती थी, इसी से इसका नाम वस्ति पड़ा। इस चिकित्सा और औषधि का 'वस्ति, नाम होने का और भी एक कारण यह है कि वस्ति विधि से दी गई औषधि वस्ति अर्थात् मूत्राशय में भी पहुंचाई जाती है। इसके सिवाय गुदाद्वार से जो औषधि दी जाती है वह भी मूत्राशय में असर पहुँचाते हुए ही दी जाती है कारण कि गुदाद्वार के भीतर की ओर ही मूत्राशय लगा है। अतः इस प्रकार भी इस विधि का नाम 'वस्ति' पड़ा।

वस्ति के तीन भेद—आयुर्वेद में वस्ति के तीन भेद माने गये हैं। १—निरूह वस्ति, २—अनुवासनावस्ति और ३—उत्तर वस्ति। निरूह वस्ति का दूसरा नाम 'आस्थापन' भी है। शरीर में औषधि को 'रोहण' ( पैवस्त ) कराने वाली अथवा शरीर के भीतरी दोषों को 'निर्हरण, करने वाली होने से इसका नाम निरूह वस्ति पड़ा है। यह वस्ति शरीर के दोषों को चलायमान करती है, शोधन करती है, दोषों को बाहर निकालती है, साथ ही दोषों का शमन, लेखन, वाजीकरण आदि कई कार्य करती है।

दूसरी तरह की 'अनुवासन वस्ति' का आशय यह है कि उसके द्वारा जो औषधि भीतर डाली जाती है वह यदि भीतर ही रह जाय तो उससे कोई हानि नहीं होती। यह प्रतिदिन भी ली जा सकती है। इसे स्नेह वस्ति भी कहते हैं। इस वस्ति द्वारा औषधियों से बना तैल आदि दिया जाता है। तीसरी 'उत्तर वस्ति' मूत्र-मार्ग या स्त्रियों के योनि मार्ग में दी जाती है। इसका उद्देश्य मूत्राशय की खराबियों को दूर करना होता है।

वस्ति यंत्र और उसकी प्रक्रिया—आज कल बाजार में धातु या कांच के बने वस्ति के यंत्र मिलते हैं। जिनमें ५-७ सेर तक पानी भरा जा सकता है। इस बर्तन के नीचे के भाग में एक टोंटी निकली रहती

www.44Books.com


है। जिस पर एक रबर की नली जो लगभग ६ फीट लम्बी होती है चढ़ादी जाती है। इस रबर की नली को चढ़ाने में अगर असुविधा जान पड़े तो पहले उसके छेद में एक पैंसिल फँसादें और फिर उङ्गली और अँगूठे की सहायता से उसे पेंसिल पर ही एक इञ्च लौटले। इस लौटी हुई रबर को टोंटी के मुँह पर रख कर असानी से चढ़ाया जा सकता है। इस रबर की नली के दूसरे मुँह पर एक 'स्क्रू' चढ़ा देते हैं जो पानी के नल की तरह खुल सकता है और बन्द किया जा सकता है स्क्रू के आगे के भाग पर एक छोटी सी नली जिसे नोजिल कहते हैं लगादी जाती है। वस्ति देने के समय यही 'नोजिल' चिकनाई लगा कर गुदा द्वार में प्रविष्ट कराई जाती है।

जब वस्ति लेना हो तो आवश्यकतानुसार कुनकुना पानी या द्रव औषधि इस वर्तन में भरकर उसे तीन चार फीट की ऊँचाई पर टाँग देते हैं। वस्ति लेने वाला या तो बाँई करवट लेट जाय या हाथ और घुटनों के बल औंधा होकर कमर को ऊँचा उठाले। 'नोजिल' को मलद्वार में प्रवेश कराने के पहले एक बार स्क्रू को खोलकर जरा सा पानी बाहर निकाल देना चाहिए। जिससे नली के भीतर की हवा निकल जाय। ऐसा न करने से कभी-कभी हवा भी भीतर चली जाती है जिससे असुविधा जान पड़ती है। इसके बाद 'नोजिल' डेढ़ दो इंच भीतर डालकर स्क्रू को खोल देना चाहिए, जिससे पानी भीतर जाने लगेगा। अगर पानी न जाय या कम जाय तो 'नोजिल' को जरा-सा इधर-उधर हटाने से पानी जाने लगता है। अगर पानी के जाते ही रोगी पेट में दर्द बतलाये तो वस्ति पात्र को एक दो मिनट के लिये उतार कर नीचा कर लेते हैं। दर्द मिट जाने पर फिर यथास्थान टाँग देते हैं इस प्रकार डेढ़ दो सेर या जितनी आवश्यकता हो उतना ज्यादा पानी या औषधि पेट में पहुंच जाने पर 'नोजिल' को धीरे से बाहर निकाल लेते हैं। रोगी को चित्त करके लिटाये रहे और पेट पर धीरे धीरे ऊपर की तरफ हाथ फेरता रहे। इस प्रकार पानी को जहाँ तक

www.44Books.com 

सम्भव हो ५-१० मिनट तक रोका जाय। इसके बाद हो सके तो दो चार मिनट उठ कर टहल भी लिया। फिर मल-त्याग करने को बैठा दिया जाय और कह दिया जाय कि पानी को अपने आप निकलने दें, उसके निकालने को जोर न लगावें। अनेक व्यक्ति प्रथम बार जरा देर भी पानी नहीं रोक सकते। इसलिये यदि तुरन्त ही पानी बाहर निकल जाय तो दस पन्द्रह मिनिट ठहर कर फिर वस्ति दे सकते हैं।

जितना पानी अन्दर चढ़ाया जाता है उतना सब ही मल के साथ प्रायः निकल आता है। किन्तु रूक्ष प्रकृति वालों का सब पानी बाहर नहीं निकलता। उसका कुछ भाग अन्दर ही मलाशय द्वारा सोख लिया जाता है। पुराने मलावरोध के रोगियों पर पानी का एक दम असर नहीं होता। उनको सेर डेढ़ सेर पानी से बस्ति शुरू करके नित्यप्रति पानी की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये। कौन आदमी कितना पानी ले सकता है यह अपने अनुभव से जाना जा सकता है। जहाँ तक सहन किया जा सके और ज्यादा कष्ट न जान पड़े उतना पानी चढ़ाया जा सकता है।

पानी चढ़ाने से आँतों में कभी-कभी कुछ पीड़ा भी मालूम होती है। कभी-कभी आँत में किसी रुकावट के कारण पानी नहीं चढ़ता। ऐसी दशा में कुछ देर ठहर कर वस्ति प्रयोग करे। इस तरह कुछ दिन लगातार प्रयोग करने से मल से भरी बड़ी आँत साफ हो जाती है। पानी के भीतर प्रविष्ट हो जाने पर पेट को मलना तथा आँत और कमर के भाग को ढीला करके भीतर के पानी को इधर-उधर हिलाने से मल शीघ्र घुल कर निकल जाता है।

वस्ति के एक-दो बार के प्रयोग से ही कुछ लाभ नहीं होता। क्योंकि मलाशय का भीतरी भाग एक दम सीधा नहीं है। कई जगह बाँका और टेढ़ा होने से उसके अन्दर में बहुत समय का चिपटा और कड़ा मल एक दम बाहर नहीं निकलता। मलाशय जब बराबर धुलकर साफ हो जाता है तब सम्पूर्ण शरीर में एक विलक्षण सुख का अनुभव

www.44Books.com 

होता है। सारे पाचन-यन्त्र निर्मल हो जाते हैं अग्नि दीप्त होकर क्षुधा की वृद्धि होती है, जिससे साधारण अन्न में भी अपूर्व स्वाद मालूम देता है। नींद खूब आती है, सिर हल्का तथा मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। शरीर में स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता तथा आरोग्य की वृद्धि होती है।

उक्त प्रकार से मलावरोध को शुद्ध किया जा सकता है। किन्तु गुल्म, प्लीहा उदरशूल, पक्वातिसार, जीर्णज्वर, जीर्णजुकाम, पसली का दर्द, योनिशूल, पेट की गुडगुड़ाहट, पेशाव का रुकना, कृमिरोग, आमवात, अपस्मार आदि वात-दोष से उत्पन्न, रोगों पर आयुर्वेदानुसार औषधियों के क्वाथ तैयार करके उक्त यंत्र द्वारा वास्ति देने से लाभ होता है। पर निरूह वस्ति लेने से पहले अनुवासन वस्ति लेकर मालाशय के भीतरी भाग को स्निग्ध कर लेना विशेष लाभकारी है। 'चक्रदत्त' में लिखा है—

"अनुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽन्हि निरूहयेत।
मध्यान्हे किंचिदावृत्ते प्रयुक्ते वलिमंगले॥"

अर्थात्—अनुवासन वस्ति के प्रयोग द्वारा स्निग्ध शरीर वाले व्यक्ति को (अनुवासन वस्ति के प्रयोग के) तीसरे दिन अथवा पाँचवे दिन, मध्यान्ह काल के कुछ बीत जाने पर, निरूह वस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

वस्ति के लिये औषधियाँ—अनुवासन वस्ति के लिये आजकल जो रबर का बना एनिमा-यन्त्र मिलता है अथवा पिचकारीनुमा यन्त्र उपयोगी रहते हैं। इनके द्वारा साधारणतः रेंडी का तैल या ग्लिसरीन आदि को मलाशय के भीतर पहुँचाया जाता है। पर आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसके लिये अनेक औषधियों के प्रयोग लिखे हैं, जो नीचे दिये जाते हैं—

(१) दशमूल, खिरेंटी, त्रिफला, रास्ना, असगन्ध, पुनर्नवा, गिलोय, एरण्डमूल, निर्गुण्डी, भारंगी, रूसा, रोहिषतृण, पियाबाँसामूल, ४-४

www.44Books.com


तोला, और उर्द, जौ, अलसी, कुलथी ८-८ तोला लेकर सबको जौकुट कर तीन मन आठ सेर जल में पकावे । १६ सेर जल शेष रहने पर छान कर उसमें जीवनीय गण की औषधियों का कल्क और ४ सेर तिल तेल मिलाकर पुनः मन्दाग्नि पर पकावें । तैल मात्र शेष रहने पर अनुवासन वस्ति के उपयोग में लावें । सर्व प्रकार के वात-विकारों में यह तैल लाभकारी है ।

(२) जीवन्ती, मोम, मेदा, महामेदा, मुलैठी, खिरेंटी-मूल, सौंफ, शतावरी, अनन्त मूल, काजू, कौंच मूल, कचूर और वच ४-४ तोले लेकर सबका कल्क कर ४ सेर गाय का दूध, आधा सेर तेल और आधा सेर घृत मिला मन्दाग्नि में पकावें । जब केवल स्नेह शेष रह जाय तब छान लेवें । इस स्नेह की अनुवासन वस्ति वात और पित्त दोनों को शुद्ध कर शरीर को पुष्ट करती है, शुक्र को बढ़ाती और आर्तव दोषों को दूर करती है ।

(३) सेंधे नमक के ढेलों को आग में खूब तपा कर घृत में बुझावे और इस घृत की अनुवासन वस्ति देवे ।

जिस दिन वस्ति देनी हो उस दिन सवेरे ही मृदु विरेचन (त्रिफला आदि) रोगी को सेवन करा देने से आँतों का संचित मल निकल जाता है, मूत्र की सफाई हो जाती है और अपान वायु का सरण हो जाता है । इन तीनों बातों के होने से अनुवासन वस्ति का स्नेह ठीक-ठीक अन्दर फैल कर अपना काम करता है । केवल वात का ही विकार हो तो ऊपर की विधि के अनुसार-विरेचन न करते हुए, एक दम अनुवासन वस्ति देने से ही लाभ हो जाता है ।

वस्ति की साधारण क्रिया ऊपर लिखी जा चुकी है और उसका प्रयोग सादा पानी लेकर साधारण मनुष्य स्वयं भी कर सकते हैं । पर आयुर्वेदिक ग्रन्थों में विशेष रोगों के लिए औषधि की व्यवस्था की गई है और वस्ति देने के विशेष नियम भी बतलाये हैं । पाठकों की जानकारी के लिये उन नियमों का सारांश यहाँ दिया जाता है—

www.44Books.com


"वस्ति प्रयोग के पहले पुरुष की पाद-परिभ्रमण (पैदल चलना-फिरना) बन्द करा देवें। उसके शरीर भर में अभ्यङ्ग (तैल की मालिश) कर गर्म जल से स्नान करावें। पश्चात् रोज वह जितना आहार करता है उसका तृतीयांश आहार उष्ण, हल्का और पतला करावें। ध्यान रहे कि यह आहार अति स्निग्ध नहीं होना चाहिये। क्योंकि आहार में गया स्नेह और वस्ति में दिया गया स्नेह मिलकर मात्रा में अत्यधिक हो जाने से अग्निमांद्य, मूर्छा, वमन वगैरा उपद्रव उत्पन्न कर सकता है। आहार करने के लगभग ३-४ घन्टे बाद यह क्रिया करनी चाहिये। आहार के बहुत समय बाद अनुवासन वस्ति द्वारा भीतर गया स्नेह ज्वर पैदा करता है। इसलिये यदि भोजन के पचने का समय हो गया हो तो मल मूत्र विसर्जन के बाद ही यह क्रिया करनी चाहिये।

शास्त्रोक्त विधि से कल्प चिकित्सार्थ बनाए हुए अलग, एकान्त, स्वतन्त्र गृह में ही पंच-कर्म कराने चाहिये। वहाँ ऐसे मनुष्य न हों जिनसे रोगी शर्म माने। ऐसे स्थान में साधारण ऊँची चारपाई इस प्रकार बिछाये कि उसका सिरहाना कुछ नीचा रहे। उस शैया पर रोगी को पूर्व की ओर मस्तक करके बाँई करवट से लिटावें और दाहिनी जांघ को समेट कर बाँई जांघ को फैलवा देवें। तब मलद्वार तथा वस्ति यन्त्र की भीतर जाने वाली नली में पर्याप्त चिकनाई, तैल आदि लगाकर धीरे-धीरे नली को भीतर डाले और यन्त्र को दबा कर भीतर पहुँचा दें। जब पात्र में थोड़ी औषधि रह जाये तो वस्ति देना बन्द कर दें, क्योंकि पूरी दवा वस्ति द्वारा खींच लिये जाने से अन्त में कुछ वायु भी भीतर चला जाता है, जिससे विकार उत्पन्न होने की आशंका रहती है। स्नेह वस्ति देने के बाद यदि १ से ६ घन्टे तक स्नेह अन्दर रह कर स्वाभाविक रीति से मल तथा अपान वायु के साथ निरुपद्रव लौट कर बाहर आ जावे तो जानना चाहिए कि अनुवासन का प्रयोग यथा स्थिति उत्तम हुआ है।

अनुवासन क्रिया उचित रीति से हो जाने के पश्चात् सोंठ और

www.44Books.com


धनियाँ का क्वाथ सेवन करा दूसरे दिन दोपहर में पथ्यकारी भोजन सदा की तरह करावें। इस तरह दो दिन पथ्य से रखकर तीसरे या पाँचवे दिन पुनः स्नेह वस्ति देवें। किन्तु जिनकी अग्नि तीव्र है या जो अत्यधिक रूक्ष हैं, जिनका कोष्ठ जड़ है उनको अगर हर रोज भी स्नेह वस्ति दी जाय तो कोई हानि नहीं। केवल बात का ही विकार हो तो जब तक उसका शमन न हो तब तक स्नेह वस्ति देना चाहिये। अन्य दोषों के संशोधनार्थ जो स्नेह बस्ति दी जाती हैं, उसका कार्य ठीक ठीक उत्पन्न होने पर ( प्रायः तीन चार स्नेह वस्ति देने पर कोष्ठ अच्छी तरह स्निग्ध हो जाया करता है ) आस्थापन या निरूह वस्ति देनी चाहिये।

**निरूह वस्ति**—अन्तिम स्नेह वस्ति देने के तीन या पाँच दिन बाद निरूह वस्ति देवें। जिस दिन यह वस्ति देनी हो उस दिन रोगी के शरीर में तैल मर्दन कर थोड़ा स्नेह देवे। प्रातः क्षुधा लग गई हो तो हलका आहार दें। यदि प्रातः ठीक दस्त न हुआ हो तो हरड़ का चूर्ण जैसा सौम्य रेचक देकर कोठा साफ हो जाने पर यह वस्ति देवें। आयुर्वेदिक विधि मे आस्थापना या निरूह वस्ति का कार्य बड़े उत्तर दायित्वों का है, अतः इसे बहुत सावधानी से दो एक अन्य जानकार व्यक्तियों को साथ लेकर देना चाहिए।

**निरूह (आस्थापना) की मत्रा**—एक वर्ष की आयु वाले को चार तोला औषधि दें। इसके बाद प्रति वर्ष चार तोला के हिसाब से बढ़ाते हुए १२ वर्ष की आयु वाले को ४८ तोला तक देवें। १३ वर्ष से १८ वर्ष तक प्रतिवर्ष १८ तोला के हिसाब मात्रा बढ़ावें। इस हिसाब से १८ वर्ष में ९६ तोले तक की मात्रा होती है। ७० वर्ष के बाद ८० तोले से अधिक नहीं देनी चाहिये। वैसे साधारणतः वयस्क व्यक्ति के लिये ६४ तोले ही पर्याप्त समझी जाती है। आधुनिक 'डूश' नामक एनिमा लगाने का यन्त्र चार 'पिंट' का अर्थात् लगभग २। सेर की मात्रा का होता है। इसके द्वारा केवल जल की मात्रा तो इतनी

www.44Books.com


या ४-५ सेर तक भी दी जा सकती हैं। पर आयुर्वेदीय पद्धति से दी जाने वाली निरूह वस्ति तीक्ष्ण, उष्ण एव रूक्ष गुण की होने तथा शरीर में शीघ्र ही पैवस्त हो जाने के कारण अधिक प्रमाण में दी जाने पर अनेक विकारों को पैदा कर देती हैं। इसलिये प्राचीन शास्त्रों में निश्चित किये हुए उपर्युक्त प्रमाणों से भी रोगी के दोष और बलानुसार न्यूनाधिक करना आवश्यक होता है।

## दोषों के अनुसार दी जाने वाली वस्ति के प्रयोग

( १ ) केवल वात-विकार के लिये वस्ति देना हो तो बेल की जड़, कुंभारी,एरण्ड की जड़, पाढ़मूल, बड़ा गोखरू, सरिवन, पिठवन और दोनों कटेरी-इस दशमूल का क्वाथ सिद्ध कर उसमें तक्र, बकरे का माँस-रस तथा अजवायन, मैनफल, बेलगिरी, कूट बच, सोंफ, नागरमोथा और छोटी पीपल-इन आठ औषधियों का कल्क एवं स्नेह ( तैल, घृत और वसा ) मिलाकर केवल एक बार वस्ति देवें। यह प्रयोग वात के सर्व विकारों पर श्रेष्ठ लाभदायक है।

( २ ) केवल पित्त विकार पर देना हो तो मुलहटी, लोध, हरड़, श्वेत, चन्दन और नीलोफर के क्वाथ द्वारा गौ-दुग्ध सिद्ध कर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर शीतल ही वस्ति द्वारा दो बार देने से पित्त के सर्व विकार दूर होते हैं।

( ३ ) कफ विकार पर कड़वी परवल ( पटोल ) और कटु परवल के पत्ते अथवा कड़वी तोरई, अमलतास का गूदा दारू, मूर्वा, गोखरू, कुड़ा छाल, कपास की जड़, पाढ़, कुलथी और छोटी कटेरी—इनका क्वाथ ८० तोले प्रमाण में सिद्ध कर उसमें सिरस वृक्ष की छाल, छोटी इलायची, मैनफल और कूट प्रत्येक १-१ तोले कीमू मिश्रित चटनी कल्क तथा गौत्र, सरसों का तैल, तिल का तैल और शहद आठ-आठ तोला मिला कर वस्ति देने से कफ के सर्व विकार दूर होते हैं। यह वस्ति तीन बार से अधिक न देवें

www.44Books.com 

वस्ति चाहे अनुवासन हो चाहे निरूह हो, शारीरिक दोषों को निकाल डालने के लिये उसमें मैंनफल, देवदाली, कड़वी तुम्बी, इन्द्र जौ, कड़वी तोरई आदि औषधियों ( विशेष कर इनके फल या मूल ) डाले जाते हैं। मैंनफल (मदनफल) का तो प्रायः सब विकारों में, उपयोग होता है। यह मधुर, कषैली; कटु एवं तिक्त रस एवं उष्ण वीर्ययुक्त होते हुए भी रूक्ष नहीं है। इन्हीं गुणों के कारण वह कफ और पित्त का शमन करने वाला और वायु का श्रेष्ठ अनुलोमक तथा शीघ्र परिणामकारी है और इसी कारण निरूह वस्ति के सब प्रयोगों में इसका उपयोग देखने में आता है। देवदाली या बंदाल का उपयोग विशेषतः कुष्ठ ( गलित कुष्ठ ) पर उत्तम होता है। कटु तुम्बी विशेषतः प्रमेह जन्य विकारों के लिये महान हित-कारी है। पाण्डु रोग और हृदरोग की बस्तियों में इन्द्र जौ का विशेष उपयोग होता है। उदर-रोगों पर कड़वा परवल अथवा कड़वी तोरई अधिक लाभदायक है।

उत्तर वस्ति—वस्ति का तीसरा मुख्य भेद उत्तर वस्ति है। पुरुषों के मूत्र मार्ग और मूत्राशय के रोगों को और स्त्रियों के मूत्राशय, योनि और गर्भाशय के रोगों को दूर करने के लिए उत्तर-वस्ति का प्रयोग किया जाता है। योनि और गर्भाशय में होने वाले वात-दोषजन्य कई विकार तथा शोथ, व्रण वगैरा इस वस्ति द्वारा शीघ्र ही ठीक किये जाते हैं। पुरुषों तथा स्त्रियों में होने वाले मूत्राघात सम्बन्धित विकार जैसे सुजाक आदि उत्तर वस्ति द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। मूत्राशय का प्रक्षालन करना तथा मूत्राशय में रुके हुए मूत्र को निकाल बाहर करना यह तो इस वस्ति का सामान्य कार्य है।

उत्तर वस्ति का कार्य भी आधुनिक यन्त्रों द्वारा सुगमता से किया जा सकता है। सुजाक आदि में जो उत्तर वस्ति दी जाती है उसके लिये खास-आकार-प्रकार की बनी काँच की पिचकारियाँ बाजार में मिलती हैं। जब इसका प्रयोग करना हो तो प्रथम पेशाब करके और वस्ति द्वारा मलाशय को भी साफ करके उत्तर वस्ति का प्रयोग करे।

www.44Books.com


जल में आवश्यक औषधि आदि मिलाकर पिचकारी के अगले भाग को लिंगेन्द्रिय में प्रविष्ट कर पीछे के हत्थे को दबा देवे। जरा देर में भीतर की खराबी को लेकर दवा बाहर निकल आयेगी। स्वस्थावस्था में भी मूत्राशय के शोधनार्थ इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह क्रिया स्वयं रोगी भी अपने हाथ से कर सकता है। इसी प्रकार स्त्रियों के मूत्र भाग से उत्तर वस्ति देने के लिए कुछ छोटे आकार की पिचकारियाँ मिलती हैं, उनसे योनि मार्ग की सफाई हो जाती है। अथवा बस्ति का जो यंत्र 'डूश' मिलता है उसी के साथ एक अलग नली मिलती है जो मलद्वार की नली से ज्यादा लम्बी होती है और जिसके सिरे पर छोटे-छोटे छेद बने रहते हैं। इस नली को डूश में लगाकर जल या औषधि के क्वाथ द्वारा सहज में स्त्री रोगों के लिये वस्ति ली जा सकती है।

अगर पेशाब न उतरता हो तो उसके लिये उत्तर वस्ति 'कैथेटर' नामक यन्त्र से दी जाती है। यह रबर की या मशाले की या धातु की बनी ६-१० इञ्च लम्बी पोली नली-सी होती है। पतली और मोटी के हिसाब से यह १ से १२ नम्बर तक की बनाई जाती है। नम्बर १ की बहुत पतले छेद की और नम्बर १२ की बहुत मोटे छेद की होती है। मूत्र-नली में किसी प्रकार की रुकावट पैदा हो जाने से इस नली को लिंगेन्द्रिय के भीतर मूत्राशय तक पहुँचा दिया जाता है और तब इसके छेद द्वारा पेशाब उतर आता है। यह क्रिया सिवाय सीखे हुए चिकित्सक या डाक्टर के अन्य द्वारा नहीं की जा सकती, इस लिये इसका विशेष विवरण देना अनावश्यक है।

वस्ति-क्रिया उदर और आमाशय सम्बन्धी अनेक शिकायतों में तुरत फल देने वाली है। अनेक बार ऐसा होता है कि पेट दर्द या कब्ज को मिटाने के लिये हर तरह की औषधियाँ दी जाती हैं पर मल निकलने का मार्ग रुके रहने से उनका कोई प्रभाव नहीं होता, उल्टा वे मल को स्थान से विचलित करके अन्य अङ्गों में फैला देती हैं जिससे

www.44Books.com 

अन्य अनेक विकार और व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी दशा में केवल वस्ति या एनिमा ही गुदा द्वार से उष्ण पानी अथवा औषधि शरीर के भीतर पहुँचा कर आमाशय में रुके विकृत पदार्थों को निकालने में समर्थ होती है। इसके द्वारा अनेक मरणासन्न अवस्था को प्राप्त रोगी कुछ ही घन्टों में बहुत कुछ स्वास्थ्य लाभ करते देखे गये हैं।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है आयुर्वेद के अनुसार वस्ति की पद्धति अधिक कठिन और विशेष अनुभव द्वारा ही सम्भव है। वास्तविक बात तो यह है कि इधर अनेक वर्षों से वैद्यों ने वस्ति का प्रयोग बिल्कुल छोड़ ही दिया था और वे उसे अधिकाँश में भूल गये थे। अब डाक्टरी चिकित्सा में वस्ति या एनिमा देने के सुगम यन्त्र बन जाने तथा डाक्टरों द्वारा उनका आमतौर से प्रयोग किये जाते देखकर वैद्यों में भी वस्ति का प्रचार बहुत थोड़े अंशों में होने लग गया है। इसलिये आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार तीक्ष्ण औषधियों की वस्ति का प्रयोग उस समय तक हर्गिज नहीं करना चाहिये जब तक उसको कराने वाला वैद्य इस कर्म का पूर्ण अनुभवी न हो और इसको पहले भी अनेक बार न करा चुका हो।

साधारणतः वस्ति कर्म के लिये एनिमा लेने की प्रचलित विधि उपयोगी है। इसमें डाक्टरी मत के मानने वाले तो रेंडी का तेल, साबुन आदि मिला देते हैं, और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार चलने वाले नीबू या नमक मिला देते हैं अथवा बिना कुछ मिलाये ही एनिमा लेते हैं। ऐसी सादे जल की एनिमा, जिसका पानी नाम-मात्र को गरम किया जाता है, या ताजा जल ही लिया जाता है, किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकती और बिना आशंका के बार-बार ली जा सकती है। यह सम्भव है कि आयुर्वेदोक्त एनिमा विशेष रोगों को दूर करने में सफल होती हो और उसका प्रभाव शरीर के भीतरी अंगों तक पहुँचता हो, पर हमारे मत से साधारण अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सकों की पद्धति से सादा जल की एनिमा ही श्रेष्ठ है। इसे अगर एक दिन उप-

www.44Books.com 

वास और पेड़ू पर आध घन्टे तक मिट्टी की पट्टी पर रख लिया जायगा तो इसके द्वारा पर्याप्त सफाई हो जायगी और अधिकांश दूषित मल बाहर निकल जायगा। यह हो सकता है कि एक बार में इसका प्रभाव यथोचित्त न हो और जिनका मलाशय बहुत दूषित अवस्था में है उनको बार-बार और कई दिन तक उसका प्रयोग करना पड़े पर यह पद्धति निरापद और स्थायी लाभ करने वाली है इसमें सन्देह नहीं। इसलिये स्वास्थ्य की कामना रखने वालों को विशेष परिस्थिति को छोड़कर साधारणतः सादा एनिमा का प्रयोग करना ही हितकारी है।

# कल्पों के विभिन्न प्रयोग

पंच कर्म द्वारा शरीर का भली प्रकार शोधन हो जाने पर कल्प की औषधि सेवन कराई जाती है। दोनों प्रकार की कल्प चिकित्सा—कुटी प्रवेशिक तथा वात तापिक की विधि हम आरम्भ में लिख चुके हैं। उन्हीं में से जो विधि अपने लिये अनुकूल और सुविधा जनक जान पड़े, उसके द्वारा कल्प की औषधि का सेवन करे। कल्प की औषधि भी दो प्रकार की होती है, 'रसायन' और दूसरी कोई एक अकेली औषधि जैसे दूध, मठा, हरड़, आँवला, सोंठ आदि। रसायन के जो प्रयोग चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थों में बतलाये गये हैं उसमें से अनेक कठिन और परिश्रम साध्य हैं। उनमें से बहुतों की समस्त औषधियाँ नहीं मिलती और बहुतों के बनाने में छः छः महीने और एक-एक वर्ष तक का समय लगता है। इसलिये वर्तमान परिस्थिति में लोगों के लिये किसी एक पदार्थ या औषधि के कल्प ही विशेष रूप से व्यवहारिक और हितकारी हैं, जो लगभग दो महीने में पूरे हो जाते हैं और जिनसे शरीर के दोष दूर होकर स्वास्थ्य का पूर्ण रूप से सुधार हो जाता है। यह सत्य है कि प्राचीन ग्रन्थों में लिखी बातें—जैसे वृद्धावस्था का दूर होकर फिर से युवा हो जाना, नये बाल, दाँत और नख आदि निकल आना, पुराने चमड़े का एक दम निकल कर युवावस्था के समान

www.44Books.com 

नया चमड़ा निकल आना आदि, इन ४० दिन या ६० दिन के कल्पों से पूरी होती नहीं दिखलाई पड़तीं। पर अब न तो पहले जैसे प्रकृति की गोद में रहने वाले मनुष्य हैं, न वह जल-वायु है, और न औषधियों में इतना प्रभाव है। इसलिये अगर प्राचीन ग्रन्थों की बातों को कुछ अंगों में सत्य भी मानलें तो भी—अब भी वैसा फल प्राप्त करने की अभिलाषा असामयिक और अस्वाभाविक है। फिर भी उन प्रयोगों का महत्व हम स्वीकार करते हैं और यदि उनको जितना संभव है उतना भी किया जाय तो भी उनसे अपार लाभ प्राप्त किया जा सकता है इसमें संदेह नहीं। अब पाठक, चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के कुछ प्रयोगों को सुनें—

## प्रथम प्रयोग —

पञ्चानां पञ्च मूलानां भागान्दश पलोन्मितान्।
हरीतकी सहस्त्रां च त्रिगुणमलकम् नवम्॥
विदारिगन्धां वृहतीं प्रश्निपर्णी निदाग्धिकाम्।
विधाद्विदारिगन्धाद्य श्वदष्ट्रां पञ्चमे गणम्॥
बिल्वाग्निमन्थ श्यानाकं काश्यमर्यम च पाटलाम्।
पुनर्नवा शूर्पपर्ण्यौवलामैरण्डमेव च॥
जीवकर्षभकौ मेदाः जीवन्तीं सशतावरीम्।
शरेक्षुदर्भकाशानां शालीनां मूलमेव च॥
इत्येषा पञ्च मूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत।
भागान् यथोक्तां स्वत् सर्व साध्यं दशगुणेम्भसि॥
दश भागाव शेषं तु पूतं तं ग्राहयेद्रसम्।
हरीतकीश्चताः सर्वाः सर्वाण्या मल कानि च॥
तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चनैः।
विनीयतास्मिन्नियूंहे चूर्णनीयानिदापयेत्॥
मण्डूक पर्ण्याः पिपल्याः शंखपुष्प्याः प्लवस्य च।
मुस्तानां सविड़ंगानां चन्दनागरुणोस्तथा॥

www.44Books.com 

मधुकस्य हरिद्रायाबचाया: कनकस्त्वच ।
भागांश्चतुष्पलान् कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्व च स्तथा ।।
सितोपल सहस्त्रां तु चूर्णितं तुलयाधिकम् ।
तैलस्वद्वयाढकं तत्रदद्यात् त्रीणि च सर्पिष: ।।
साध्यमौडुम्बरे पात्र तत्सर्वं मृदुनाग्निना ।
ज्ञात्वालेह्मदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत: ।।
क्षौद्रप्रमाणं स्नाहार्द्ध तत्सर्वं घृत भाजने ।
तिष्ठेत् संमूर्च्छितं तस्य मात्रा काले प्रयोजयेत् ।।

अर्थात्—पांचों पंच मूलों के अलग-अलग दस पल ( एक पल बराबर है ८ तोला ) लेने चाहिये । बड़ी हरड़ ताजी १ हजार और आंवला ३ हजार ले । पहला पंचमूल शालपर्णी, प्रश्न पर्णी, छोटी और बड़ी कटेरी और बड़े गोखरू का होता है । दूसरा पंचमूल वेल, सोनापाठा, गभारी, पाटला तथा अरणी का होता है । तीसरा पंचमूल पुनर्नवा, मद्गपर्णी, माषपर्णी, बला और एरण्ड का होता है । चौथा पंचमूल जीवक, ऋषभक, मेदा, शतावर तथा जीवनी का होता है । पाँचवा पंचमूल, शर, इक्षु, दर्भ, काश तथा शाली की जड़ का होता है । उपरोक्त दवाइयों को दस गुने पानी में डालकर काढ़ा बनाना चाहिये । पानी का दसवां भाग शेष रहने पर स्वच्छ कपड़े से छान लेवे । हरड़ और आंवलों (जो काढ़े में दवाओं के साथ कपड़े की पोटली में बाँधकर कढ़ाई में डाल दिये जाते हैं ।) की गुठलियों को निकाल देना चाहिए । इसके बाद कुचल कर कूर्चनों से इनका रेशा निकाल देवे । एक बड़ी बाल्टी या बाल्टै पर मजबूत छिरछिरा कपड़ा बाँधकर हरड़ और आँवलों को थोड़ा थोड़ा करके कपड़े पर रखे और हाथ की हथेली से रगड़े । इससे आँवलों और हरड़ का रेशा ऊपर कपड़े पर रह जायगा और बिना रेशे का भाग नीचे बाल्टी में आ जायगा । रेशे निकल जाने पर हरड़ और आँवले के शुद्ध भाग को काढ़े में डाल देवे साथ ही इन चीजों का चूर्ण भी काढ़े में मिला देवे—मण्डूक पर्णी, छोटी पीपल,

www.44Books.com 

शङ्खपुष्पी, प्लव ( केवटी, सुगन्ध तृण ) मोथा, वायविडङ्ग, लाल चन्दन, अगर मुलहठी, हल्दी, वच, कनक ( नागकेशर ) छोटी इलायची और दालचीनी प्रत्येक ४ पल ( ३२ तोला ), मिश्री एक हजार पल ( आठ हजार तोला ), तेल दो आढक ( सोलह सेर ), घृत तीन आढक ( चौबीस सेर )। इन सबको औडुम्बर ( ताँबे ) के कलई किए बर्तन में पकावे और लकड़ी की बड़ी करछुल से पकावे। जब लेह अच्छी प्रकार बन जावे और जले नहीं तब उतार लेना चाहिए। इसमें ढाई आढक ( बीस सेर ) शहद मिला कर घृत से भावित पात्र में रख देना चाहिये। मात्रा और समय को देखकर इस अवलेह का उतना सेवन करना चाहिए जितना पच जावे और भूख का नाश न करे। सेवन करने वाला पुरुष भोजन आदि का पूर्ववत् व्यवहार करे। इस रसायन के जीर्ण होने पर दूध के साथ साठी के चावल खाने चाहिए। वानप्रस्थी, बालखिल्य और अन्य तपस्वी लोगों ने इस रसायन के प्रभाव से अपार आयु प्राप्त की है। दीर्घायु चाहने वाले व्यक्ति को चाहिये कि विधि पूर्वक इस रसायन का सेवन करे।

## द्वितीय प्रयोग—

यथोक्त गुणनामामलकानां सहस्रं पिष्टि स्वेदन विधिना पयस ऊष्मणा सुस्विन्नमनातप शुष्क मनस्थि चूर्णयेत् तदमलक सहस्त्रं स्वरस परिपीतम् स्थिरा पुनर्नवा जीवन्ती नागबला ब्रह्मसुवर्चला मण्डूकपर्णी शतावरी शङ्खपुष्पी पिप्पली वचा विडङ्ग स्वयम् गुप्ताऽमृता चन्दनागुरु मधुक मधूक पुष्पोत्तल पद्ममालती युवती यूथिका चूर्णाष्टभाग संयुक्तम् पुनर्नाग वला सहस्त्रा वल स्वरस परिपीत मनातप शुष्क द्विगुणित सर्पिषा क्षौद्र सर्पिषा वा क्षुद्रगुडाकृति कृत्वा शुचौ दृढ़े घृतभाविते कुम्भे भस्मराशेरधः स्थापयेत अन्तर्भूमे पक्ष कृतरक्षाविधानम-थर्ववेद विदा पक्षात्यये चोद्घृत्य कनकरजत ताम्रप्रवाल काला-

www.44Books.com


यस चूर्णाष्ट भाग संयुक्त मर्ध कर्ष वद्धया यथोक्तेन विधिना प्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्नि बलमभि समीक्ष्य जीर्णे च षष्टि के पयसा ससर्पिष्क मुच सेव्यमानो यथोक्तान् गुणान् समश्नुते इति ।

इदम् रसायने ब्रह्मम् महर्षिगण सेवितम् ।
भवत्यरोगो दीर्घायुः प्रपुञ्जानो महावलाः ॥

प्रथम प्रयोग में कहे गये गुणों से युक्त एक हजार आँवलों को पिष्ट स्वेदन विधि के द्वारा दूध की गर्मी से स्विन्न करे। आँवलों को पोटली में बाँधकर एक बाल्टे में लटकावे और बाल्टे में दूध भर कर औटावे। पर यह ध्यान रखें कि उबाल आने पर भी दूध पोटली में न लगे अर्थात् दूध की भाप में ही पकावे। जब भली प्रकार से स्विन्न हो जायें तब इनकी गुठली निकाल कर इनको छाया में सुखा लेवे। सूखने पर इनका चूर्ण बना लेवे और उसे एक हजार आंवलों के स्वरस में भिगो लेवे। रस के सूखने पर शालपर्णी पुनर्नवा, नागवला, ब्रह्मसुवर्चला, मण्डूक पर्णी, शतावरी, शङ्ख पुष्पी, छोटी पीपल, वच, वायविडङ्ग, कौंच, गिलोय, लाल चन्दन, अगर, मुलहटी, महुवे के फूल, नील कमल, श्वेत-कमल, मालती, मोंगरा, जुही इनका चूर्ण मिलाना चाहिए। इन सबका चूर्ण स्वरस से भावित आंवले के चूर्ण का आठवां भाग होना चाहिये। फिर इस सारे चूर्ण में एक हजार नागवला के रस को डाल कर छाया में सुखाना चाहिए। सूखने पर चूर्ण का दुगना घृत और चूर्ण के बराबर शहद मिलावे और छोटी-छोटी डेलियां बना लेवे। इनको घी से भावित दृढ़ पात्र में रख कर उपलों की राख में भूमि के अन्दर गाढ़ देना चाहिए। अथर्ववेद के जानने वालों से रक्षा विधान कराकर गड्ढे में गाढ़ देवे। १५ दिन पीछे निकाल कर सोना, चाँदी, तांवा, मूंगा, फौलाद की भस्मों को औषधि के आठवे भाग के बराबर मिलावे (सब भस्मों का योग आठवां हो) इस रसायन को कुटी-प्रवेश विधि से आधा कर्ष (एक तोला) से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे आधा कर्ष बढ़ाते हुए सेवन

www.44Books.com 

करना चाहिये। इसको सेवन करते समय बल का ध्यान रखना चाहिये। जब यह औषधि जीर्ण हो जाय तो साठी का भात दूध के साथ खाना चाहिये। इस ब्राह्म रसायन का महर्षियों ने सेवन किया था। इसके सेवन से पुरुषनिरोग, दीर्घायु, बड़ा बलशाली, जनता में प्रिय, सुन्दर तथा मनोवांछित फल को प्राप्त करने वाला होता है। वह सुनते ही किसी बात को याद कर लेता है और उसका मन आर्य विचारों का हो जाता है। वह वायु के समान पराक्रमी हो जाता है और उसके शरीर में विष भी पहुँच कर अमृत में परिवर्तित हो जाता है।

## तीसरा प्रयोग––

हरीतक्यामलकविभीतक पंच पंचमूल निर्यूहेपिप्पली मधुक मधूक काकोली क्षीर काकोल्यात्म गुप्ता जीवकर्षभक क्षीर शुक्ल कल्क संप्रयुक्तेन च सर्पिकुम्भम् साधयित्वा प्रयुञ्जानोग्नि बल समां मात्रां च जीर्णे च क्षीर सर्पिम्भा शालिपष्टिक मुष्णोदकानुपानमशनम् जरा व्याधि पाप्माभिचार व्ययगतभयः शरीरेन्द्रिय बुद्धिबलमतुल्य मुपलभ्या प्रतिहृत सर्वारम्भः परमायुरवाप्नुयात्।

अर्थात्––'हरड़, बहेड़ा, आंवला पाँचों पञ्चमूल (जिनका प्रथम प्रयोग में उल्लेख किया गया है) इनका काढ़ा बनावे। इस काढ़े का एक भाग ले तथा छोटी पीपल, मुलहठी, महुआ, काकोली, क्षीर काकोली, कौंच के बीज, जीवक, ऋषभक और सिंघाड़े का कल्क (सबको सिल पर महीन पीस कर चटनी बनाले, उसी को कल्क कहते हैं) का एक भाग ले, विदारीकन्द का स्वरस (विदारीकन्द को पीस कर बिना पानी मिलाये रस निकाल लें) एक भाग लेकर आठ गुने दूध के साथ मिला देवे और दुगुने घृत को लेकर उपरोक्त द्रव्यों द्वारा घृत को सिद्ध करे। जठराग्नि के बल के अनुसार इस घृत का सेवन करे। जीर्ण होने पर दूध के साथ शाली (हेमन्त का धान) या साठी का भात खाना

www.44Books.com


चाहिए। अनुपान गरम जल होना चाहिए। उसके प्रयोग से बुढ़ापा, पाप, रोग तथा अभिचार का भय नहीं रहता। इसके सेवन से देह, इन्द्रिय और बुद्धि का अतुल बल हो जाता है। सर्व कार्य बिना बाधा के पूर्ण होते हैं और पूर्ण आयु होती है।

## चौथा प्रयोग—

हरीतक्यामलक विभीत हरिद्रा स्थिरा बचा ( बला ) विडङ्गामृत बल्ली विश्व भेषज मधुक पिप्पली सोम बलसिद्धेन क्षीर सर्पिषा मधुशर्कराभ्यामपि च सन्नीयामलक स्वरस शत-पत्र परिपीत मामलक चूर्णमयश्चूर्ण चतुर्भाग संप्रयुक्त पाणि यूषेण पयसाव सर्पिष्कम् शालिषाष्टि मश्नीयात। त्रिवर्ष प्रयोगा-दस्य वर्ष शतम जरं वयस्तिष्ठति श्रुत मनतिष्ठते सर्वामयाः प्रशाम्यन्ति विषम विर्षा भवन्तिगात्रंगात्रमश्मवन् स्त्रिरी भव तः अदृश्यो भूतानां भवति।

अर्थात्—"हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रश्नपर्णी, हल्दी, खरेंटी, वायविडङ्ग गिलोय, सोंठ, मुलहटी, पिप्पली, सोमयल्क (श्वेत खदिर) इनके काढ़े से पकाये गये दूध में से निकाले घी के साथ मधु और शर्करा मिलाकर तथा एक सौ आंवले के चूर्ण में आंवलों का स्वरस मिलाकर, इस चूर्ण से चतुर्थांश लौह भस्म मिलाकर दोनों को सम्मिलित करके प्रति दिन प्रातः कुटी-प्रवेशिका विधि से एक कर्ष मात्रा में सेवन करे। सायङ्काल घी मिश्रित शालि या साठी के भात को दूध या मूंग के यूष के साथ खाना चाहिए। इस प्रकार तीन वर्ष तक इस प्रयोग को करने पर एक सौ वर्ष तक बिना बुढ़ापे के आयु रहती है, सब रोग नष्ट हो जाते हैं, शरीर में विष निर्विष हो जाते हैं और शरीर पत्थर के समान दृढ़ हो जाता है।

www.44Books.com


## पाँचवा प्रयोग—

आमलक सहस्त्रं पिप्पली सहस्त्र संप्रयुक्तं पलाश तरुण-क्षारोदकोत्तरंतिष्ठन् तदनुगत क्षारोदक मना तम शुष्क मनस्थि चूर्णी कृतं चतुर्गुणाभ्यां मधु सर्पिभ्यां संनीय शर्करा चूर्ण चतुर्भाग संप्रयुक्तं घृत भाजनस्थं षण्मासान् स्थापदयैत्तर्भूमः । तस्योत्तर वालमाग्नि बलसममात्रायौर्वाह्णिकः प्रयोग सात्म्या पेक्षश्चाहार विधिर्नापराह्निनन कस्वस्य प्रयोगाद्वार्ष शतमजरं वयास्तिष्ठति ।

अर्थात—"एक हजार आँवले और एक हजार छोटी पीपल को तरुण ढाक के क्षारोदक में डुबाकर रखे । ( ढाक का क्षारोदक बनाने के लिए नए ढाक के वृक्ष को जला कर राख कर लेवे । राख में छः गुना पानी डालकर विलोड़ना चाहिए । फिर अगले दिन इस पानी को धीरे-धीरे राख से नितार ले । इस प्रकार २१ बार करना चाहिये । इस सारे नितारे पानी को पका कर क्षार कर लेते हैं । नितरे हुए पानी में क्षार का सब भाग आ जाता है । अतः इसे क्षारोदक कहते हैं ।) जब क्षार का जल इसके अन्दर खूब प्रविष्ट हो जाय तब इनकी गुठलियाँ निकाल कर छाया में सुखा कर चूर्ण बनाले । इसमें चार गुना शहद और घी मिलावे और चूर्ण की चौथाई शक्कर मिलावे । अब इसको एक पात्र में रखकर ६ मास तक जमीन में गाढ़ देवे । फिर अग्नि और बल के अनुसार प्रातः समय इसको सेवन करे । जो भोजन इसके अनुकूल हो वही करे । इसके प्रयोग से १०० वर्ष तक जरा रहित आयु रहती है ।"

## छटा प्रयोग—

"विडंग तण्डुल चूर्णा नामाढकं पिप्पली तण्डुलाना मध्यर्धाढकं सितोपलांसर्पिस्तैल मध्वाढकैः षड्भिरेकी कृतम घृतभाजनस्थं प्रावृषि भस्मराशौ निध्यात् ।"

www.44Books.com 

अर्थात्—"छिलके रहित विडंग का चूर्ण आठ सेर, पीपली के बीज का चूर्ण १२ सेर तथा मिश्री, घी, तेल और शहद प्रत्येक आठ-आठ सेर लेवे ओर इन सबको मिला घी से भावित पात्र में बरसात के प्रारम्भ में भस्म के ढेर में गाढ़ दे। सेवन विधि तथा गुण पिछले प्रयोग की भाँति हैं।

## सातवाँ प्रयोग—

"जिन पर किसी प्रकार की चोट न लगी हो, जिसमें किसी प्रकार का रोग (कीड़े आदि) न हों, जो रस और वीर्य से पूर्ण हों तथा जो पके हुए जामुन के समान काले रङ्ग के हों, ऐसे भिलायों को जेठ और आषाढ़ मास में एकत्रित करके जौ से भरे कोठे में या उड़द के ढेर में एक बर्तन में भरकर रख देवे। चार मास बाद अगहन या पौष मास में इनका सेवन आरम्भ करे। खाने से पूर्व अपने शरीर को शीतल, मधुर तथा स्निग्ध पदार्थों से संस्कृत करले। इनके सेवन की विधि यह है कि पहले दस भिलावों को कुचल कर आठ गुने पानी में पकावे जब आठवां भाग रस रह जाय तब इसको छानकर इसमें दूध मिला कर पीवे और पीने से पहले मुँह में घी का लेप लगा लेवे, जिससे मुख के भीतर की सारी त्वचा चिकनी हो जाय। इस प्रकार प्रतिदिन एक-एक भिलावा बढ़ाते हुए तीस भिलावा तक बढ़ावे। इसके फिर एक-एक घटा कर दस तक ले आवे। इस प्रकार एक हजार भिलावों का प्रयोग करे। भिलावों के जीर्ण होने पर घी और दूध के साथ शालि या साठी का भात खावे। प्रयोग के बाद (जितने दिन भिलावों का प्रयोग किया हो उससे दूने दिन तक) दूध का ही उपयोग करे अर्थात् दोनों समय दूध ही पीवे। इस प्रकार करने से एक सो वर्षों की बिना वृद्धावस्था की आयु प्राप्त होती है और समस्त रोग दूर हो जाते हैं।"

## आँठवा प्रयोग—

संवत्सरं पयो वृत्तिर्गवां मध्येवसेन सदा।

www.44Books.com


सावित्रीमनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी यतेन्द्रियः ।।
संवत्सरान्ते पौषीं व माधीं व फाल्गुनीं तिथिम ।
अहोपवासी शुद्धश्च प्रविश्यामलकी वनम् ।।
वृहत्फलामारुन्ध द्वयद्रुमं शाखागतम् फलम् ।
गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेज्जपन् ब्रह्मामृतागमात ।।
तवाह्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणम् ।
शर्करामधुकल्यानि स्नेहवन्ति मदूनि च ।।
भवत्यमृत संयोगात्तानि यावन्ति मह्ययेत ।
जीवेद्वर्ष सहस्त्राणि तावन्त्यागत यौवनः ।।
सौहित्यमेषा गत्वा तु भवत्यमहं सन्तिभः ।
स्वयं चास्योपतिष्ठन्ते श्रीर्वेदा वाक् च रूपिणी ।।

अर्थात्—"एक वर्ष पयन्त केवल दूध पर रहकर सदा गायों के बीच में निवास करे, वहाँ पर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए गायत्री का ध्यान करे। एक वर्ष उपरान्त पौष, माघ, फाल्गुन मास की किसी पुण्य तिथि में आँवले के जङ्गल में पहुँचे। वहाँ जाने पर तीन दिन तक उपवास करे फिर शुद्ध होकर वन में घुसे। वहाँ किसी भी आँवलों से युक्त पेड़ पर चढ़ कर हाथ से फल को पकड़ कर ब्रह्म 'ओंकार' का जप करता रहे। इस प्रकार जप करने से क्षण भर के लिये आंवले में अमृतत्व आ जाता है। अमृत के आने से आँवले, शक्कर और शहद के समान मीठे, स्वाद वाले और कोमल हो जाते हैं। वह जितने आंवले खायेगा उतने ही अधिक समय तक युवा रहकर जीवित रहेगा। यदि भर पेट तृप्त होकर खावे तो अमर हो जावे। लक्ष्मी, वेदवाणी, सरस्वती और कान्ति स्वयं उसके सामने उपस्थित होती हैं।"

## नौवाँ प्रयोग—

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसोगुडच्यास्तुरुमूल पुष्पा कल्कः प्रयोज्यः खलु शंख पुष्पाः ।।

www.44Books.com 

आयुः प्रदान्यामय नाशनानि बलाग्नि वर्णस्वर वर्धनानि ।
मेध्यानि चेतानि रसायनानि मध्या विशेषेख च शंखपुष्पी ॥

अर्थात्—"मण्डूकपर्णी का स्वरस प्रयोग करना चाहिए (२) मुलहठी का चूर्ण गाय के दूध के साथ सेवन करना चाहिए (३) गिलोय के रस का प्रयोग करना चाहिये (४) शंखाहुली को उसके फूल तथा जड़ के साथ प्रयोग में लाना चाहिये। ये चारों रसायन आयुवर्धक, रोग नाशक, अग्नि, बल, वर्ण तथा स्वर की वृद्धि करते हैं। ये रसायन मेधा वर्धक भी हैं, शंखपुष्पी विशेष रूप से बुद्धि वर्धक है ।"

## दसवाँ प्रयोग—

जरणान्तेऽमया मेकां प्राग्भुक्त' द्वै विभीतके ।
भुक्त्वा तु मधु सर्पिम्यां च त्वार्यामलकानि च ॥
प्रयोजयेत्समायेकां त्रिफलया रसायनम् ।
जीवद्वर्ष शतं पूर्णम जरोऽव्याधिरेव च ॥

अर्थात्—रात्रि के भोजन के जीर्ण हो जाने पर प्रातःकाल बड़ी हरड़ तथा भोजन के पूर्व दो बहेड़े तथा भोजन के बाद चार आँवले घी और शहद साथ के खावे । (इन चीजों को कूट कर तथा छानकर घी और शहद के साथ खाना चाहिए) इस रसायन को एक वर्ष तक प्रयोग करने से १०० वर्ष तक वृद्धावस्था और रोगों से मुक्त रहकर जीवित रहता है।

## ग्यारहवाँ प्रयोग—

पंचकर्मों के द्वारा शरीर को दोषों से रहित करके और कुटी में प्रवेश करके पूर्व के भोजन के भली भांति पच जाने पर ब्राह्मी के रस को लेकर हजार आहुतियों से हवन करके अपने बलानुसार सेवन करे । इसका सेवन प्रातःकाल ही होना चाहिये और औषधि के पच जाने पर दोपहर को नमक रहित यवागू (जौ का गाढ़ा जूस पीये। दूध को पीने वाला व्यक्ति दूध के साथ खाये। इस प्रकार

www.44Books.com


सात दिन प्रयोग करने से ब्रह्म तेज वाला और मेधावी होता है। दूसरे सप्ताह सेवन करने से इच्छित ग्रन्थ को रच सकता है और भूली हुई बातें भी स्मरण करने में समर्थ होता है। तीसरे सप्ताह सेवन करने से दो बार कहे हुये सौ श्लोकों को भी याद कर लेता है। इस प्रकार २१ दिन सेवन कर लेने से दरिद्रता रहित हो जाता है। साक्षात् सरस्वती उसके शरीर में प्रवेश करती है और वेद इसको उपस्थित हो जाते हैं और बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहता है।

## बारहवाँ प्रयोग—

श्लक्ष्णीकृत भृङ्गरजस्य चूर्ण तिलार्द्धक चातल फार्द्धकञ्च।
सशर्करं महायतो गुडैर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः॥
अन्धः पश्येद गम न रहितो मत्तमातंगगामी।
मूको वाग्मी श्रवण रहितो दूरशब्दानुसारी॥
नीरङमर्त्यो भवति पलतो नीलजीभूत केशो।
जीर्ण दत्ताः पुनरपिनवाः क्षीर गौरा भवन्ति॥

अर्थात्—महीन पिसे हुए भाँगरे के चूर्ण में उससे आधे काले तिलों का चूर्ण और भाँगरे के चूर्ण से ही आधे आँवले का चूर्ण मिला कर शक्कर या गुड़ के साथ खावें। उपयोग करते समय कुटी प्रावेशिका विधि का प्रयोग करें। इसके सेवन से, रोग वृद्धावस्था तथा मृत्यु दूर हो जाती है। इसके प्रयोग से अन्धा भी देखने में समर्थ हो सकता है, चलने में असमर्थ मस्त हाथी के समान चल सकता है, गूंगा विद्वान् पुरुष की तरह बोलने में समर्थ हो सकता है, बहरा बहुत दूर का शब्द सुनने में समर्थ हो सकता है। मनुष्य रोग रहित होता है और सफेद बाल काले बादलों की तरह श्याम हो जाते हैं और नष्ट हुए दाँत भी सफेद दूध के समान स्वच्छ और नवीन हो जाते हैं।

## कल्पों के कुछ सरल प्रयोग—

(१३) अब बहुत बड़े ग्रन्थों के कठिन प्रयोगों के बजाय अन्य वैद्यक

www.44Books.com 

ग्रन्थों से कुछ साधारण प्रयोग दिये जाते हैं, जिनको साधारण बुद्धि और स्थिति के व्यक्ति भी करके लाभ उठा सकते हैं—

गूगल, अर्जुन की छाल, लोहभस्म, वायविडंग, शुद्ध भिलावा, गोखरू, निसोथ, शीपण फल, मुनक्का और फालसा—इनमें से प्रत्येक को दस दस तोला लेकर, विधि पूर्वक मिला कर ६ से १२ रत्ती तक की गोलियाँ बनाले। इसका सेवन ६ मासा तक गाय के दूध अथवा जल के साथ करने से भगंदर, बबासीर, कोढ़, गंज, सफेद बाल और वृद्धावस्था में बहुत लाभ पहुँचाता है और मनुष्य नीरोग रह कर १०० वर्ष की आयु भोग सकता है। यह 'गद-निग्रह' नामक ग्रन्थ का योग सब प्रकार से निर्दोष और साधारण मनुष्यों के लिये भी सुलभ है।

(१४) चित्रक की जड़ को छाया में सुखाकर बारीक चूर्ण करले। इसमें से ड़ेढ़ माशा से ३ माशा तक घी, मधु या घी-दूध या स्वच्छ जल के साथ ४२ दिन तक सेवन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोगों से मुक्त होकर बहुत वर्षों तक जीवित रहता है। पथ्य में काली गाय का दूध ले, वह न मिले तो जिस रंग की गाय मिले उसी का ले। भोजन में साठी चावल, मूंग का यूष आदि का प्रयोग करे। इससे बल की वृद्धि होकर शरीर सुन्दर बनता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और शरीर का प्रत्येक अवयव क्रियात्मक बन जाता है। ( चित्रक की जड़ में विष होता है अतएव इसका प्रयोग अल्प मात्रा में सावधानी से ही करना चाहिये)

(१५) ४० तोला अश्वगन्धा और ४० तोला विधारा' इन दोनों का बारीक चूर्ण कर उसे मिट्टी के चिकने पात्र में रख लीजिये। इसमें से नित्य ६ माशा दूध के साथ तीन माशा तक सेवन करने से काया निरोगी और स्वस्थ्य रहती है। सफेद बाल काले हो जाते हैं और मुख मण्डल की झुर्रियां नष्ट हो जाती हैं। 'शारंगधर संहिता' के इस प्रयोग को करते समय ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। यह औषधि सामान्य और सस्ती होने पर भी परम शक्ति प्रदायक है।

www.44Books.com 

(१६) सौंठ, काली मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, ब्राह्मी, नीम गिलोय, लाल चित्रक, नाग केशर, काला भाँगरा, रेणुक हल्दी, दारु हल्दी, भाँग, तज, इलायची, शीवण, वाय विडंग और तज-इन २० द्रव्यों में से सोंठ को १२ तोला लें और शेष को ६-६ तोला। यह १२६ तोला चूर्ण तैयार होगा। इसमें २३४ तोले एक साल का पुराना गुड़ मिलावें और इसकी ३६० गोलियाँ बना लें इस दवा को काँच की बरणी में भर कर रखना चाहिये। एक वर्ष तक प्रातःकाल या भोजन से पहले संध्याकाल एक गोली नित्य सेवन करें। इसके साथ सात्विक आहार करे, खट्टा, कड़वा, खारी, चिरपिरा वादी और गरिष्ठ पदार्थों से परहेज रखे। इसके सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होकर शरीर स्वस्थ्य बनता है। सफेद बाल काले हो जाते हैं, दृष्टि तेज होती है, आवाज सुरीली व मधुर हो जाती है। तेज और बल की वृद्धि होती है और शारीरिक व मानसिक शक्ति का विकास होता है। यह प्रयोग 'भैषज्य रत्नावली' का है।

## हकीमी ग्रन्थों के प्रयोग—

(१७) इसके आगे कुछ नुस्खे यूनानी चिकित्सा की पुस्तकों में से दिये जाते हैं। वैसे यूनानी चिकित्सा की उत्पत्ति आयुर्वेदिक ग्रन्थों की सहायता से ही हुई है, पर उन लोगों ने अपने अनुभव से उसे विशेष सुगम बना दिया है। इस पद्धति की एक विशेषता यह भी है कि इसकी औषधियाँ प्रायः तीक्ष्ण और कटु नहीं होती और सौम्य प्रकृति के व्यक्तियों के लिये खास तौर पर उपयोगी होती हैं। प्रथम प्रयोग इस प्रकार है—

"मालकाँगनी की ताजी मिङ्गी का ऊपर का छिलका खूब साफ करके एक बोतल या थैली में रख ले। पहले दिन तीन मिङ्गी ताजे पानी के साथ सुबह के वक्त निगल ले। दूसरे दिन ४ मिङ्गी, तीसरे दिन ५ मिङ्गी इस तरह एक-एक रोज बढ़ाते हुए तेरह तक पहुँच जाये और फिर तेरह दाने रोज सेवन निरन्तर साल भर तक करे। साल भर में

www.44Books.com


शरीर में पूरी जवानी फिर से आ जायगी, परन्तु जो बीच में ब्रह्म-चर्य भंग कर दिया तो सारा किया कराया मिट्टी में मिल जायगा। साथ में परहेज भी रखना चाहिये। किसी तरह का माँस का भोजन न करे। चना, मौठ, मूँग और गेहूँ खाये, घी ज्यादा ले। साग तरकारी में सिवाय मेथी के साग के और कुछ न खाय। मिठाई खाने का मन चले तो केवल मिश्री या जलेबी खायें। इस प्रकार जी कड़ा करके इसको साल भर तक सेवन कर लिया तो फिर उमर भर किसी दवा के सेवन की जरूरत न होगी और अन्त समय तक बदन में जवानों की सी फुर्ती रहेगी।

(१८) साफ किया हुआ माल काँगनी का तेल ३ तोला, खालिस शहद ३ तोला, काली गाय का घी ३ तोला एक खरल में डाल कर एक पहर तक खूब खरल करके एक करले, फिर इसको एक अमृत वान में बन्द करके उसकी डाँट पर चपड़ी से मुँह बन्द कर दे और एक मटके में शाली चावल भर कर उसके बीच में इसको रख दे। छः महीने बाद निकाल कर इसमें से २ रत्ती सुबह के वक्त मलाई के साथ सेवन करे। हर साल जाड़ों में ३ महीने सेवन किया करे। यह बड़ा शक्तिशाली योग है।

(१९) एक पीली हरड़, जो न बहुत बड़ी हो न बहुत छोटी, उसको दो बराबर टुकड़े करके बीजों समेत एक छोटी चीनी की प्याली में इस तरह भिगो दे कि जब वह भीगने पर पूरी फूल जाय तो भी प्याले के किनारे से एक अंगुल नीची रहे। १४ घन्टे बाद बीजों को निकाल दे और हरड़ को बिना कुछ खाये सुबह ही खूब चबा चबा कर खाले और वह पानी जिसमें वह भीगी थी पी ले। इस तरह से एक साल सेवन करे और घी दूध कुछ अधिक खाये। इस एक चीज को सारी उम्र में केवल एक बार सेवन करना ही पर्याप्त है। परहेज केवल लाल मिर्च और खटाई का है। इसके द्वारा खोई हुई शक्तियाँ वापिस आती हैं, बाल सफेद से काले हो जाते हैं, आँखों की ज्योति मन्द पड़

www.44Books.com


गई हो तो फिर से बलवती हो जाती हैं, सब प्रकार के त्वचा के रोग दूर होकर शरीर निर्मल हो जाता है। यह सब से सहज और बड़ा हितकारी प्रयोग है।

( २० ) साफ किये हुए गोरखमुन्डी के फूल एक हिस्सा, लाल रंग के ताजे गुलाब के फूल एक हिस्सा और ताजा पानी तेरह हिस्सा का भभके से अर्क उतार ले। इसको तेरह माशा से शुरू करके हर रोज ९ माशा बढ़ाते रहें। जिस मात्रा पर पहुंच कर कुछ लाभ अनुभव हो उसी मात्रा का सेवन जारी रखें। जब तबियत बिल्कुल ठीक होने लगे तो साढ़े चार माशा रोज के हिसाब से घटाकर फिर १३ माशाः की मात्रा पर आ जाय। तब इसी मात्रा को थोड़े दिन और सेवन करके औषधि छोड़ दे।

इससे वात, कफ, पित्त के विकार से उत्पन्न सब रोग शान्त होते हैं। सब प्रकार के त्वचा के रोगों को लाभ करता है खट्टी चीजों, दूध गरिष्ठ भोजन और उत्तेजना दिलाने वाले कामों से परहेज रखे।। ब्रह्म-चर्य से रहे, स्नान कम करना चाहिये, ठंडा पानी न पीना चाहिये, जहाँ तक हो सके कुनकुना पानी पिये। नमक और मिर्च जितना कम इस्ते-माल करे उतना ही अच्छा है। घी का सेवन ज्यादा करे।

( २१ ) मुन्डी का वृक्ष जब बड़ा हो जाय तो फल,फूल, शाखा, जड़ सब समेत छाया में सुखालें। सूखने पर सबका बारीक चूर्ण कर लें। इसे प्रातः काल ६ माशे खाकर ऊपर से डेढ़ पाव गाय का दूध मिला कर पीना चाहिये। इसके निरन्तर ४० दिन के सेवन से बल वीर्य की वृद्धि होती है। सफेद बाल काले हो जाते हैं। परहेज ऊपर जैसा ही है इसके सेवन काल में गाय का दूध जितना हजम हो पी सकते हैं।

( २२ ) **मुन्डी को साल भर तक सेवन की कल्प विधि**—इस विधि में साल भर तक नित्य प्रति ४ माशे मुंडी का चूर्ण सेवन करना चाहिए और प्रत्येक ऋतु में उसका अनुमान बदल देना चाहिये। सावन भादों

www.44Books.com 

में ६ माशे शुद्ध घी के साथ मिलाकर सेवन करे। इसी प्रकार क्वार कार्तिक में एक पाव गाय का दूध और मिश्री के साथ, अगहन पूष में १ पाव छाछ के साथ, माघ फाल्गुन में ५ तोला कांजी के साथ, चैत्र वैसाख में ६ माशा शहद के साथ और जेठ आषाढ़ में १ माशे शक्कर के साथ सेवन करे। इस प्रकार साल भर तक मुन्डी सेवन करने से बुढ़ापा कभी पास नहीं आयेग। और जो आ गया होगा तो लौट जायगा ।

( २३ )इसी प्रकार बड़ी हरड़ को साल भर तक सेवन करने का भी कल्प होता है। उसके अनुसार ४ माशे कुटी हुई हरड़ जेठ अषाढ़ में गुड़ के साथ प्रातः काल ले। सावन भादों में १ माशे सेंधे नमक के साथ, क्वार-कार्तिक में ४ माशा मिसरी के साथ, अगहन- पौष में १ माशा पिसी हुई सोंठ के साथ माघ फागुन में १ माशा पिसी हुई पीपल के साथ, चैत्र-वैशाख में चार माशा शहद के साथ सेवन करे ।

इस विधि से हरड़ को सेवन करने से पहले महीने में आलस्य और सुस्ती दूर होगी। दूसरे महीने में ताकत बढ़ती जान पड़ेगी। तीसरे महीने में आँखों की ज्योति तीव्र होगी, चौथे महीने में दिल से सुस्ती दूर होकर उत्साह बढ़ेगा । पाँचवे महीने में दिमाग में ताजगी पैदा होगी । छटे महीने में पूर्ण विकास होगा । सातवे महीने में स्मरण शक्ति तेज हो जायगी। आठवे महीने में बात समझने की विलक्षण बुद्धि का संचार होगा। नवे महीने में दिन तारे दिखाई देंगे। ग्यारहवे महीने में पूर्ण यौवन का विकास होगा और बारहवे महीने में शरीर दिव्य और सुन्दर हो जायगा। जो लोग साल भर तक नियम से हर्र का सेवन करते रहेंगे उनके शरीर में कोई रोग शेष नहीं रह सकता, इसका अनुभव बहुत व्यक्ति कर चुके हैं। इस प्रयोग में उत्तम जाति की बड़ी हरड़ का चूर्ण ही लेना चाहिये ।

( २४ ) मेथी का कल्प—एक मन शुद्ध भिलावा लेकर उसको

www.44Books.com


पिसवाले और सावन भादो में उस चूर्ण को दस विस्वा जमीन में खाद की तरह डाल कर चारों तरफ इस तरह से मेंड़ बनादे कि बरसात का पानी उसके बाहर न जा सके। उसके बाद उस जमीन पर दो तीन बार हल चलवाकर कातिक के महीने में मेंथी बो दें जब साग निकले तो उसको पका कर गेहूँ की रोटी के साथ खाये और घी दूध का सेवन ज्यादा करे और नमक का परहेज रखें। तीन महीने में इसके गुणों का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगेगा। ताकत खूब आयेगी और बाल भी काले हो जाना कोई आश्चर्य नहीं।

## हल्दी कल्प

गीली ताजी हल्दी लाकर छाया में शुद्ध कर तथा पीस कर कोरे बर्तन में रखे। इसे ४ माशा गौ मूत्र के साथ सेवन करने से शरीर शोधित होता है। एक सप्ताह इसका सेवन करने से कुक्षी, वृक्क शूल आदि रोग नष्ट होते हैं और फिर ७ दिन तक गर्म जल के साथ सेवन करने से मनुष्य वीर्यवान बनता है। इस प्रकार साठी चावल का भात दूध या घृत के साथ खाना चाहिये। यही हल्दी का चूर्ण ४ माशा शहद के साथ खाने से एक महीने में चन्द्र समान कांति होती है, तीन महीने में पित्त परिपूर्णतया शुद्ध होकर कामला रोग दूर होता है, चार मास में ज्वर आदि से मुक्ति होती है, पाँच महीने में स्थिर यौवन प्राप्त होता है। इसी प्रकार एक वर्ष तक सेवन करने से मनुष्य सब रोगों से मुक्त होकर पूर्ण शक्तिशाली होकर बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहता है। इस कल्प के लिये यदि काली हल्दी प्राप्त हो जाय तो सर्वोत्तम है।

## दुग्ध कल्प

दूध का सेवन मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है, और दूध के द्वारा अनेक प्रकार की व्याधियां दूर हो सकती हैं, इस तथ्य को हमारे यहां के साधारण मनुष्य भी जानते हैं। बाल्यावस्था से ही हमारे

www.44Books.com


यहाँ दूध पीने पर जोर दिया जाता है, क्योंकि लोगों का विश्वास है कि इस आयु में दूध का नियम पूर्वक सेवन करने से स्वाथ्य में दृढ़ता और स्थिरता आती है वह जन्म भर मनुष्य की सहायक रहती है। इस देश के चिकित्सा ग्रन्थों में तो दूध को'भूलोक का अमृत' बतलाया गया है और प्रत्येक पशु के दूध के गुण विस्तार पूर्वक बतलाये गये हैं।

अब कुछ वर्षो से योरोप अमरीका में भी दूध की रोग नाशक शक्ति का प्रचार हो रहा है और हजारों रोगियों के कठिन रोग केवल दूध के प्रयोग द्वारा दूर किये जा चुके हैं एक अंग्रेज विदुषी ऐला व्हीलर' ने लिखा है "कि हृदय से सम्बन्ध रखने वाले कुछ स्थानीय रोगों को छोड़ कर ऐसी कोई शारीरिक व्याधि नही है जो दूध के यथा विधि सेवन करने से न मिट जाय। इसमें सन्देह नहीं मनुष्यों को अनेक प्रकार के रोग निर्बलता और विटामिन की कमी से उत्पन्न होते हैं। इसकी पूर्ति के लिये दूध सबसे अच्छा पदार्थ है। क्योंकि रोगी की पाचन शक्ति प्रायः ठीक नहीं होती, इसलिए उसे ऐसे भोजन की आवश्यकता होती है जो शरीर का पोषण तो भली प्रकार कर सके पर जिसके पचाने में अधिक शक्ति खर्च न हो। ऐसा सबसे अच्छा और प्राकृतिक भोजन दूध ही है। इसमें हमारी आवश्यकतानुसार सभी पोषण तत्व मौजूद रहते हैं। छोटे बालक बहुत समय तक दूध पर खूब स्वस्थ्य रहते हैं और अनेक वृद्ध भी केवल दूध का सेवन करके वर्षो तक जीवित रहते देखे गये हैं। डाक्टरी पुस्तकों में भी ऐसे उदाहरण मिलते है जिनमें किसी कारणवश एक व्यक्ति को ५० वर्ष और दूसरे को १५ वर्ष केवल दूध पर रखा गया और वे स्वस्थ्य रहकर सब तरह के काम करते रहे। यही कारण है कि उन तमाम बीमारियों के लिये जिनको अंग्रेजी में 'न्यूनता की बीमारी' ( डिफीशिऐंसी डिसीजेज) कहते हैं, उनके लिये दूध का सेवन ही सबसे बड़ा इलाज कहा गया है।

दूध के द्वारा चिकित्सा करने का निश्चय करने के बाद अनजान व्यक्ति दो एक विशेष भूल कर बैठते हैं पहली भूल तो यह होती है

www.44Books.com 

कि वह पाचन प्रणाली ( मुँह से लेकर मलद्वार तक ) की तैयारी किये बिना ही ठोस भोजन बन्द करके एक दम दुग्धाहार शुरू कर दें और दूध को पानी की तरह पीने लगें। दूसरी भूल यह हो सकती है कि कोई मनुष्य एक-डेढ़ सेर दूध रोज पीवे और समझले कि मैं दुग्धाहार कर रहा हूँ। कुछ लोग ऐसे भी देखे गये हैं जो दो तीन बार ठोस भोजन खा लेते हैं और बीच-बीच में थोड़ा थोड़ा करके सेर-दो सेर या अधिक दूध भी पी लेते हैं। वे भी यह समझते हैं कि हम दुग्धाहार पर हैं अथवा दुग्ध चिकित्सा कर रहे हैं। ऐसे विचार अनजानपन के चिह्न हैं और उनसे बचना चाहिये। जो लोग दूध को औषधि की तरह सेवन करना चाहते हैं और जिनकी इच्छा है कि इस प्रकार की दुग्ध चिकित्सा से उनका कोई रोग दूर हो जायगा या गिरे हुए स्वास्थ्य में सुधार हो तो उनको चिकित्सा द्वारा बतलाये सब नियमों का पूर्ण रूप से पालन करते हुए इस चिकित्सा को करना चाहिए।

अगर कोई मनुष्य दुग्ध चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व अपने शरीर के भीतरी भाग की ठीक तरह से सफाई नहीं कर लेगा और दूध की खुराक ठीक परिमाण में और नियत समय पर नहीं लेगा, तो उसे पूरे सन्तोष जनक परिणाम भी प्राप्ति नहीं हो सकते।

**दुग्ध-चिकित्सा की तैयारी**—इस सम्बन्ध में सबसे प्रथम बात यह है कि चिकित्सा के लिये उचित आराम और अवकाश का प्रबन्ध पहले से कर लिया जाय। यद्यपि बहुत अशक्त रोगियों को छोड़कर अन्य कई व्यक्ति इस इलाज के साथ अपना दैनिक कार्य भी थोड़े बहुत अंशों में करते रहते हैं, पर इससे चिकित्सा के लाभों में भी अन्तर पड़ जाता है। जो व्यक्ति अन्य कामों का ध्यान छोड़कर चिकित्सा को ही अपना मुख्य उद्देश्य मानेगा और इस सम्बन्ध के नियमों को ठीक ठीक पालन करेगा उसको और अपेक्षाकृत कहीं अधिक लाभ प्राप्त होगा। इसमें एक कारण यह होता है कि जब मनुष्य पर किसी कार-बार की जिम्मेदारी रहती है, तो उनके कारण अनेक बार दूध लेने की

www.44Books.com 

नियम बद्धता व क्रम रुक जाता है जो कि इलाज का एक बहुत महत्व पूर्ण अङ्ग है। इस चिकित्सा काल में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि जिसमें शरीर के मल निवारक और पाचक अङ्गों को छोड़कर शेष सभी अंगों को पूर्ण विश्राम मिल सके।

रोगी के रहने के स्थान में ऐसी सुविधा होनी आवश्यक है कि उसे बार बार पेशाब करने में कोई कठिनाई न हो। पर स्वाभाविक है कि जब पाँच-सात सेर तक पतला पदार्थ नित्य लिया जायगा तो मूत्राशय में जलीय अंश अधिक परिमाण में पहुंचेगा और वह भीतरी विकारों को साथ लेकर बार बार बाहर निकलता रहेगा।

कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनमें दुग्ध-कल्प करने वाले रोगी को अनिवार्य रूप से पूर्ण विश्राम मिलना चाहिये और बराबर बिस्तर पर लेटे रहना चाहिये, गुरदों की सूजन, खूब बढ़ा हुआ मधुमेह, क्षय रोग या ऐसे अन्य घातक और क्षीण बनाने वाले रोग में उत्तम प्रकार की चारपाई और बिस्तर की व्यवस्था होनी चाहिये, जिसमें रोगी को काफी आराम मिले और उसे कष्ट अथवा परिश्रम न उठाना पड़े।

रोगी के सोने का पलंग यदि लोहे या लकड़ी का हो तो और भी अच्छा है, क्योंकि आमतौर से लोहे का पलंग अधिक आरोग्यदायक होता है एवं उसमें करवट बदलने पर चड़-चड़ या खट-खट की आवाज नहीं होती। बिस्तर बहुत मोटा न होकर हलका और गरम होना अच्छा है। बहुत मोटा गद्दा लाभदायक नहीं माना जाता। बिस्तर में ऊपर और नीचे दो चादरें अवश्य होनी चाहिये। जिससे रोगी के बदन से निकलने वाला पसीना उनमें सोख जाया करे। इन चादरों और तकिया के खोल आदि को अक्सर धोकर साफ करते रहना उचित है। वैसे भी रोगी के सब कपड़ों को नित्य प्रति धूप देते रहना चाहिये।

**कौनसा दूध काम में लाया जाय**—दुग्ध चिकित्सा के लिये बकरी का दूध बहुत अच्छा माना गया है। बकरी दिन भर जंगल में चलती फिरती है और भाँति-भाँति की पत्तियाँ खाया करती है। इससे इसके

www.44Books.com


दूध में औषधि का सा गुण आता है। गाय का ताजा दूध भी लाभ-दायक माना गया है। भैंस क दूध चिकित्सा के लिये उपयुक्त नहीं समझा जाता क्योंकि वह काफी भारी होता है और आलस्य उत्पन्न करता है। पशुओं के रंग का भी दूध पर कुछ प्रभाव जैसे रंग चिकित्सा में भिन्न भिन्न प्रकार के रंगों का प्रकाश देकर शरीर पर प्रभाव डाला जाता है वैसी प्रक्रिया कुछ अंशों में रंग के कारण जान-वरों के दूध पर भी होती है। उदाहरणार्थ पीले और काले रंग के पशुओं का दूध यकृत रोगों के लिये लाभकारी है। सफेद रंग के जान वरों के दूध में फास्फोरस और पोटाशियम की मात्रा अधिक रहती है अतएव वह कफ की वृद्धि करता है। लाल जानवरों का दूध रक्त के लाल परमाणुओं को बढ़ाता है।

इसी प्रकार पशुओं के स्वास्थ्य और परिमाण का भी उनके दूध पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। जो जानवर खुली हवा और धूप में चलते फिरते हैं उनका दूध हल्का और स्वास्थ्य कर होता है और उसमें विटामिन पूर्ण मात्रा में होते हैं। किन्तु जो जानवर सदैव घर के अन्दर बँधे रहते हैं उनका दूध भारी और दोष पूर्ण होता है। रोगी जानवर का दूध चिकित्सा में कदापि नहीं लेना चाहिये।

सबसे अधिक प्रभाव पशु के चारे और अन्य खाद्य पदार्थों का पड़ता है और यदि किसी जानवर के दूध में कोई दोष जान पड़े तो वह उसके भोजन में परिवर्तन करके पूरा किया जा सकता है। वैद्यक ग्रन्थों में तो यह भी विधान किया गया है कि जिस रोग की चिकित्सा करनी हो उसी के अनुसार चारा भी गाय को खिलावे। उदाहरणार्थ विदारी कन्द की लता और कन्द खाने वाली गाय का दूध पौष्टिक होता है कपास के विनौले और तिल की खली खाने वाली का मांस बढ़ाने वाला होता है आक की पत्ती खाने वाली का कफ—श्वांस में बहुत लाभ पहुंचाता है वासा ( अडूसा ) की पत्ती खाने वाली का भी खाँसी और श्वास रोगी में अत्युत्तम है इसी प्रकार अगर किसी जानवर का

www.44Books.com


दूध वायु कारक जान पड़े तो उसे घास और शाकपात अधिक खिलाना चाहिए इससे दूध का वादीपन मिट जायगा। जिस पशु का दूध कब्ज करता हो तो उसे प्याज, नीम आदि ऐसी वस्तुएँ खिलानी चाहिये जो रेचक हों।

दूध को गरम करके पिया जाय या कच्चा, इसमें बड़ा मतभेद देखने में आता है। पर इस सम्बन्ध में कोई खास नियम बना सकना असम्भव है, जहाँ जैसी परिस्थिति हो वैसा ही करना उचित है। अगर दूध देने वाले पशु अपनी निजी गौशाला के हों और उनके भोजन तथा स्वच्छता का ठीक प्रबन्ध किया गया हो तो तुरन्त का दुहा (धारोष्ण) दूध सबसे अच्छा है और वैद्यक ग्रन्थों में सर्वत्र उसी की प्रशंसा की है।

ऐसे दूध में उसके सब तत्व और विटामिन स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं और वह शरीर पर अपूर्व प्रभाव डालता है। इसलिये अगर दूध पूर्ण विश्वास योग्य है और सामने दुहा जाता है तो उसे कच्चा ही पीना बहुत लाभदायक है। पर जो दूध बाहर से मँगाया जाता है और बहुत देर रखा रहता है, जिसकी स्वच्छता पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता तो उसे गर्म करके पीना ही हितकर है, क्योंकि दूध के दुहने के थोड़ी देर बाद ही उसमें कीटाणुओं की वृद्धि होने लगती है। दूध को न तो बहुत तेज न बहुत धीमी आंच पर पकाये। बहुत से लोग धीमी आँच पर जोर देते हैं, पर वैसा करने से दूध में मलाई अधिक पड़ती है जो दुग्ध चिकित्सा के अनुकूल नहीं है। इसके लिए दूध को साधारण आग पर इतना ही गर्म करना उचित है जिससे एक या दो उबाल आ जायें।

बहुत से लोगों को दूध पीना पसन्द ही नहीं होता और कुछ लोगों के पेट में अधिक दूध पीने से गड़बड़ी होने लगती है। ऐसे लोगों के लिए दूध को मठा के रूप में बदल कर देना हितकारी होता है। मठा बनाने में जो एक प्रकार का खट्टापन आता है उससे वह जल्दी हजम

www.44Books.com 

होने लायक बन जाता है। खासकर संग्रहणी और मन्दाग्नि के जिन रोगियों को दूध नहीं पच सकता उन्हें मठा देना लाभदायक होता है। इस प्रकार का मठा बनाने के लिये दूध को बिलो लेना ही काफी होता है, मक्खन निकालने की आवश्यकता नहीं। मक्खन न निकाला हुआ मठा कुछ समय तक संग्रहणी के अशक्त रोगियों को दिया जा सकता है। इस प्रकार मठा पीते समय उसमें नमक जीरा आदि कोई चीज न छोड़नी चाहिए।

## दुध-कल्प के नियम——

( १ ) दूध की चिकित्सा आरम्भ करने से पहले कम से कम एक दिन उपवास अवश्य कर लेना चाहिये। इससे पेट और आँतों की शुद्धि हो जाती है और उनकी पाचन-शक्ति भी बढ़ जाती है जिन लोगों को कब्जी हो वह एक दिन के बजाय दो तीन दिन का भी निराहार उपवास कर सकते हैं। उपवास के दिनों में पानी खूब अधिक मात्रा में पीना चाहिये और हो सके तो उसमें एक नीबू का रस भी मिलाते रहना चाहिये। इसमें शरीर के भीतरी भाग धुल जाते है और पाकाशय, गुर्दा और खून की बहुत कुछ सफाई हो जाती है। उपवास के दिनों में यदि जी मिचलाये या कै हो जाय तो पानी में थोड़ा सोडा घोल कर पीना चाहिये।

( २ ) उपवास समाप्त हो जाने पर शरीर को केवल दूध के अहार पर रखना चाहिये। चिकित्सा-काल में किसी भी अन्य प्रकार का भोजन करना मना है पानी भी नहीं पीना चाहिये, क्योंकि दूध में स्वयं ही पानी काफी मात्रा में मौजूद रहता है। तो भी प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि यदि दुग्ध-कल्प में भी प्यास अधिक लगे तो पानी पीने में कोई हानि नहीं। दूध में चीनी या मीठा भी बिल्कुल न डाला जाय।

( ३ ) एक बार में पाव भर से आध सेर तक पिया जा सकता

www.44Books.com 

है। पहले दूध को अच्छी तरह मिला लिया जाय और फिर चम्मच से थोड़ा-थोड़ा मुँह में कुछ देर रख कर पिया जाय, जिससे उसमें लार मिलती रहे। इस प्रकार स्वाद लेकर धीरे-धीरे दूध पीने से उसके पचने में बड़ी सहायता मिलती है। इस विधि से आधा सेर दूध के पीने में ४-५ मिनट का समय अवश्य लगना चाहिये।

( ४ ) एक बार में आध सेर से अधिक दूध नहीं पीना चाहिये इतना दूध आध आध घण्टे या एक एक घण्टे के अन्तर से कितनी ही बार पिया जा सकता है। एक मनुष्य कितना दूध पिये और कितने अन्तर से पिये इसका नियम प्रत्येक मनुष्य को शारीरिक अवस्था के अनुसार ही बनाया जा सकता है। अमेरिका में किसी किसी रोगी को ३२ सेर तक दूध एक दिन में पिलाया गया है और भारत वर्ष में भी २८ सेर तक का रिकार्ड मौजूद है। पर यह तो अधिकतम मात्रा है जो किसी विशेष रोग या विशेष रोगी को दी जा सकती है। साधरण तौर पर ५ ६ सेर तक दूध काफी रहता है। इसे मनुष्य हर आध-आध घन्टे के अन्तर से दिन भर में पी सकता है।

( ५ ) चिकित्सा के पहले दिन दो तीन सेर से अधिक दूध नहीं पीना चाहिये। सवेरे ७ बजे से ६ बजे तक आध-आध घन्टे के अन्तर से दो सेर दूध पिया जा सकता है। शेष एक सेर दूध में से आध सेर दोपहर को और आध सेर संध्या को ले सकते हैं। दूसरे दिन एक सेर दूध बढ़ा कर ४ सेर ले सकते हैं। इसी क्रम से बढ़ाकर ८-८ सेर तक पहुंच सकते हैं। अधिक दूध पीने की अवस्था में ७ से १० बजे तक तीन सेर दूध पिया जा सकता है। फिर दोपहर को १२ बजे से ३ बजे तक तीन सेर लिया जा सकता है शेष दूध संध्या को ६-७ बजे पी सकते हैं। पर दूध एक बार में आधा सेर से अधिक न लिया जाय और पीने के समय का अन्तर भी आध घण्टे से कम न रहे। वैसे शुरू में कितने ही लोग एक बार में पाव भर दूध ही पीते हैं और समय का अन्तर भी पौन घण्टा या एक घण्टा रखते हैं। ये सब नियम मोटे हिसाब

www.44Books.com


से लिखे गये है आवश्यकता और सुविधा की दृष्टि से इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। अमरीका के डाक्टर मैकफैडन साहब का मत है कि रोगी को केवल दिन के १२ घण्टों में दूध पीना चाहिये और रात के १२ घंटों में बिल्कुल खाली पेट रहना चाहिये। जितना दूध पीना हो उसे दिन के बारह घंटों में बराबर बराबर बाँट लेना चहिये और चाहे आवश्यकता हो या न हो, इच्छा हो या न हो उसी नियम से दूध बराबर पीते रहना चाहिये। इस हिसाब से एक व्यक्ति १२ घन्टे में आध-आध घन्टे के अन्तर से दूध सुविधापूर्वक पी सकता है।

( ६ ) दूध की मात्रा नियत करने के दो हिसाब भी निकाल लिये गये हैं। एक तो यह है कि मनुष्य का जितना वजन हो, उसके अनुसार प्रति १२-१५ सेर पर एक सेर के हिसाब से दूध लिया जाय। इस हिसाब से सवा मन के मनुष्य के लिये ४ सेर १॥ मन के मनुष्य के लिये ५ सेर और २ मन के मनुष्य के लिये ६ सेर दूध काफी है। अगर भूख ज्यादा लगती हो तो इस मात्रा को सवाया या ड्योढ़ा किया जा सकता है कुछ लोगों ने लम्बाइ के हिसाब से दूध का परिमाण नियत किया है अर्थात् मनुष्य जितने फीट लम्बा हो उसे उतने ही सेर के हिसाब से दूध दिया जाय। पर जो आदमी लम्बे होने के साथ ही दुबले हों उनको वजन के हिसाब से ही दूध देना उचित है ;

( ७ ) कुछ लोगों को दूध पीते समय उससे अरुचि उत्पन्न हो जाती है, अथवा पेट में गुड़गुड़ाहट या वायु जान पड़ती है इसका कारण यह है कि पेट में दूध को पचाने योग्य अम्ल रस कम बनता है। इसलिये दूध पीने के पहले एक या आधा नीबू खा लिया जाय तो यह शिकायत जाती रहेगी। अथवा यदि थोड़ा थोड़ा छाछ बीच में पी लिया जाय तो भी यह शिकायत मिट सकती है। यदि इससे भी शिकायत दूर न हो तो एक-दो दिन का उपवास कर डालना चाहिये। इससे पाकाशय में नई स्फूर्ति आ जाती है और अम्ल रस अधिक बनने लगता है।

www.44Books.com


( ८ ) कुछ लोगों को दुग्ध कल्प के आरम्भ में कब्ज रहने लगता है और कुछ को दस्त आने लगते हैं। इन दोनों हालतों में एनिमा लेना सबसे अच्छा उपाय है । एनिमा के लिये सदैव शुद्ध सादा पानी ही लेना ठीक है। इच्छा हो तो उसमें थोड़ा सा नमक मिला कर एनिमा ले सकते हैं।

( ९ ) कभी-कभी दूध पीते पीते पेट फूलने लगता है और अफरा सा जान पड़ता है । इसमें घबराने की कोई बात नहीं। कारण यह होता है कि दूध का जल भाग पेट में अधिक इकठ्ठा हो जाता है और उससे भारीपन जान पड़ता है । इसलिये यदि कुछ देर के लिये दूध पीना बन्द कर दिया जाय तो दूध का संचित जल भाग पेट की दीवारों में आप से आप सोख लिया जाता है और मूत्राशय को धोता हुआ बाहर निकल जाता है।

( १० ) चिकित्सा के दिनों में जहाँ तक सम्भव हो परिश्रम के कार्य न करना चाहिए। यदि शरीर को पूरा पूरा विश्राम दिया जा सके तो बहुत ही अच्छा है' किन्तु यदि न हो सके तो कम से कम आरम्भ में चार छः दिन तो अवश्य विश्राम करे। बाद में अपना साधारण काम करता रहे तो विशेष हर्ज नहीं है।

( ११ ) दूध की सफाई और शुद्धता पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। किन्तु दिन भर तत्काल का दुहा दूध मिल सकना कठिन है। हमारे यहाँ तो साधारणतः सुबह और शाम ही पशु दुहे जाते हैं । इस लिये या तो दूध को बर्फ में दबा कर रखना चाहिए अथवा गर्म करके काम में लाया जाय । बर्फ के नीचे दबा हुआ दूध पीते समय उसे थोड़ा गुनगुना कर लेना चाहिये। बहुत ठन्डा दूध पीना कल्प में उचित नहीं

( १२ ) जिन लोगों को खट्टे, मीठे और तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन करने की आदत है, अथवा जो पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय काफी इत्यादि के आदी हैं, उन्हें दुग्ध-चिकित्सा के आरम्भ के कुछ दिन बड़े कठिन जान पड़ेंगे। उपर्युक्त चीजों के बिना बेचैनी सी मालूम देगी।

www.44Books.com


शरीर में असाधारण परिवर्तन होते जान पड़ेंगे। सम्भव है कुछ पीड़ाएँ भी उत्पन्न हो जायें। परन्तु इनसे घबराकर बीच में ही चिकित्सा को छोड़ देना ठीक नहीं। दृढ़तापूर्वक मन को वश में रख कर इलाज जारी रखने से कुछ समय में सब कठिनाइयां स्वयंमेव हल हो जायेंगी।

(१३) किसी भी चिकित्सा पद्धति में सफलता प्राप्त करने के लिये बड़ा जरूरी है कि दिल को प्रसन्न और उत्साहयुक्त रखा जाय। प्रसन्नता, उत्साह, श्रद्धा और आनन्द से जठराग्नि प्रबल होती है। साधक को सदैव यह भावना रखनी चाहिये कि "मैं सही इलाज कर रहा हूँ, इससे जरूर अच्छा हो जाऊँगा और कोई भी बाधा मुझे अपने इरादे से नहीं हटा सकती।"

(१४) मन का प्रभाव स्वास्थ्य पर अत्यधिक पड़ता है। अतएव चिकित्सा-काल में मन सब प्रकार सुखी और सन्तुष्ट रखना आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो हँसमुख मित्रों और छोटे बच्चों में ही रह कर अपना समय बिताना चाहिये। चिकित्सा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अविश्वास रखना अपने ही हित में हानिकारक होगा, जो लोग कुछ अस्थिर अथवा निर्बल चित्त के हों उनके लिए पहले ही खूब विचार कर और चित्त को पक्का पोढ़ा कर इस चिकित्सा का आरम्भ करना चाहिये।

(१५) चिकित्सा के समय थकान जान पड़े तो उसका अचूक और परम लाभप्रद उपाय देर तक गरम जल से स्नान करना है। इस स्नान के लिये पानी का तापमान शरीर की गरमी के समान होना चाहिये अथवा इससे ५–७ डिग्री ज्यादा। इस गरम जल से स्नान का यह असर होगा कि नसों को ताजगी मिलेगी, रक्त-संचार ठीक होगा, खाल के छिद्रों में होकर विजातीय पदार्थ अधिक मात्रा में निकलेंगे और सभी माँस पेशियों व अन्य अङ्गों को विश्राम व ताजगी प्राप्त होगी।

www.44Books.com


(१६) दुग्ध-चिकित्सा जब कल्प के रूप में की जाती है, उस समय शारीरिक श्रम की तरह मानसिक श्रम से भी बचना चाहिये । जिन लोगों को किताबें और अखबार पढ़ने का शौक हो उनको चिकित्सा के दिनों में जहाँ तक हो कम पढ़ना चाहिये और वह भी ऐसी चीजें जिससे दिमाग पर बोझ न पड़े । क्योंकि पढ़ने-लिखने, कोई कल्प सम्बन्धी काम करने, भाषण देने में भी शक्ति खर्च होती है और बीमारी के समय शक्ति का संग्रह करना अच्छा है, खर्च करना ठीक नहीं ।

(१७) दुग्ध चिकित्सा के फलस्वरूप अनेक लोगों में बलवीर्य की बहुत अधिक वृद्धि होती है अतः उसके फल स्वरूप काम वासना की उत्पत्ति भी सम्भव है । पर चिकित्सा काल में इन्द्रिय संयम अनिवार्य नियम के रूप में पालन करना चाहिये । ऐसे अवसर पर अपना ध्यान ऐसे विषयों से हटा कर घूमने, व्यायाम करने या किसी अन्य प्रकार के मनोरंजन में लगाना चाहिये ।

(१८) अनेक लोगों को दूध पीते-पीते उससे अत्यन्त अरुचि हो जाती है और दूध पीते ही उल्टी हो जाती है । इसका एक कारण भैंस का बहुत गाढ़ा दूध लेना भी होता है, जिसमें चिकनाई बहुत अधिक होती है । ऐसे गाढ़े दूध की मारी या थोड़ी मलाई उतार देने से उबकाई मिट जाती है । परन्तु अरुचि दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि नीबू के रस का सेवन किया जाय । इसलिये नीबू के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर रख लिये जायें, और जब अरुचि पैदा हो तो दो-चार बूंदें दूध पीने से पहले चूस ली जायें, अथवा दस-पांच बूंदें बाद में ली जा सकती हैं । इस प्रकार दिन भर में एक या दो नीबू लेने से अरुचि मिट सकती है । नीबू का रस निचोड़ कर लेने के बजाय चूसना ज्यादा अच्छा है । जिन लोगों को नीबू का रस खट्टा लगे वे सन्तरे या मौसमी का रस ले सकते हैं ।

(१९) दूध को जल्दी हजम करने का एक उपाय यह भी है कि उसे जल्दी-जल्दी एक ग्लास से दूसरे ग्लास में धार बांध कर डाला

www.44Books.com 

जावे (फेंटा जावे) इससे दूध में झाग पैदा होंगे और ये झाग दूध को जल्दी हजम कर देते है। बहुत से डाक्टरों और आहार-विशेषज्ञों का मत है कि आध आध घन्टे के अन्तर से दूध लेते रहने से पेट को अवकाश नहीं मिलता और इसीलिये अरुचि उल्टी या दस्त हो जाते हैं। उनके मतानुसार पेट को काफी आराम देते रहना चाहिये और अधिक अधिक देर के बाद दूध पीना चाहिये। मैकफेडन साहब का कहना है कि अन्य गरिष्ठ पदार्थों के साथ देर देर से दूध देने से अजीर्ण आदि उपद्रव हो सकते हैं। पर यदि केवल दूध (और फलों का रस भी) ही लेते रहेंगे तो ऐसी गड़बडी न होगी।

(२०) अन्य प्राकृतिक उपचारों की तरह दुग्धाहार से भी बहुत से लोगों को पुरानी दुखदाई बीमारियाँ उमड़ आती हैं—संधिवात, शिर-दर्द, फोड़े फुंसी, पेट या गुरदों की पीड़ाएँ या अन्य विकार हो जाते हैं कुछ लोगों के कान में दर्द हो जाता है किसी को फेंफड़े व आंतों की जननेन्द्रिय व अन्य अवयवों की पुरानी सूजन की जगह पर कुछ दर्द सा जान पड़ता है, कई पुराने रोग उभर आते हैं। यह इस बात का चिन्ह होता है कि प्रकृति शरीर के अन्दर की टूट-फूट को ठीक कर रही है और पुरानी नसों या रग-पुट्ठों में इकट्ठे हुए मैल को निकाल रही है। अगर साधक धैर्य पूर्वक चिकित्सा में लगा रहेगा तो कुछ समय में सब प्रकार की शिकायतें स्वयं ही स्थायी रूप से ठीक हो जायेंगी।

(२१) दूध पीना आरम्भ करने पर अक्सर स्वप्नदोष की शिकायत बढ़ जाती है। इससे घबराना न चाहिए। स्वप्नदोष से कुछ हानि जरूर होगी, पर दूध–कल्प से जो शक्ति बढ़ती है उसके सामने यह हानि कम है इसे कम करने के लिए दूध पीना सोने के तीन घन्टे के पहले समाप्त कर लेना चाहिये। ऐसी हालत में दूध पीना कुछ सवेरे शुरू किया जा सकता है।

(२२) कुछ लोगों को दूध पीते समय पतले दस्त आने लगते हैं। यह अक्सर उन्हें ही आते हैं जिन्हें किसी न किसी प्रकार की पुरानी

www.44Books.com


संग्रहणी होती है। अन्य लोगों को तीन चार दिन तक पेट चल कर बन्द हो जाता है और टट्टी बँध जाती है। यदि पाँच दिन तक पेट चल कर भी कोई सुधार न हो, तो दूध की जगह मठा लेने लग जाना चाहिए। मठा भी वही लाभ पहुँचावेगा जो दूध पहुँचाता है। दूध को उबालने से उसके कुछ तत्व जल अवश्य जाते हैं, उनकी पूर्ति के लिए रोज शाम को मठा पीना समाप्त करने पर आध पाव सन्तरे का रस पीना चाहिये या एक नीबू चूस लेना चाहिये।

## मठा बनाने की विधि

मठा बनाने के लिए एक उफान का दूध जमाना चाहिये। दूध दो वक्त जमाना चाहिये, रात को जमाये हुए का मठा सुबह बना लिया जाय और दोपहर तक खर्च कर डाला जाय, सुबह के जमाये का मठा दोपहर को बनाकर शाम तक काम में लाया जाय। दूध को जल्दी जमाने के कई उपाय हैं, जैसे अधिक जामन डालना, या ज्यादा खट्टा जामन डालना या जिस बर्तन में दही जमाया जाय उसका मुँह पतले कपड़े से बांधकर बर्तन को कम्बल से लपेट दिया जाय और किसी बन्द जगह में जैसे आलमारी आदि में रख दिया जाय। ऐसा करने से तीन चार घन्टे में दही आसानी से जम जाता है। इन विधियों की आवश्यकता जाड़े में ही प्रायः पड़ा करती है। गरमियों में तो दूध सहज में जल्दी जम जाता है। मठा बनाते समय दही में एक सेर पीछे पाव भर पानी मिलाकर मथना चाहिये। मक्खन निकालने की आवश्यकता नहीं।

दूध की हिफाजत—दूध कल्प के लिए कच्चा दूध पीना अधिक फायदेमन्द बतलाया गया है। इसलिये अगर गाय को सवेरे, शाम और दोपहर को भी दुहने की व्यवस्था हो सके तो अच्छा है। अगर ऐसा न हो सके तो दो बार के दूध से ही काम चलाने की कोशिश करनी चाहिए। जाड़े के मौसम में दूध काफी देर तक खराब नहीं होता।

www.44Books.com


गर्मियों में दूध भरे बर्तन को ठन्डे पानी से भरी मिट्टी की नांद या किसी अन्य बर्तन में रखकर बिगड़ने से बचाया जा सकता है। सुबह का दूध दस बजे तक सहज में ठीक रखा जा सकता है। इसके बाद बिगड़ने की आशंका हो तो उसमें सेर पीछे आध पाव पानी मिलाकर उबाल लिया जाय, पर एक दो उफान से ज्यादा न आने दें। इस तरह का गर्म दूध पीने पर एक आध सन्तरा या नीबू दिन भर में खा लेना चाहिए।

दुग्ध कल्प की सफलता के लिये दूध की उत्तमता का ख्याल रखना भी आवश्यक है। साधारणतः तो लोग आँखों के सामने दुहे और खूब गाढ़े दूध को ही अच्छा समझते हैं। इसलिये जिन पशुओं को शहर में खूब खली, दाना बिनौला आदि दिया जाता है उनका दूध लोगों को बढ़िया जान पड़ता है। पर लाभ की दृष्टि से और खास कर कल्प में उपयोग करने के लिये उस पशु का दूध कहीं अधिक उपयोगी होता है जो दिन भर जंगल में घूम-फिर कर घास-पात खाता है। उसमें चिकनाई कम होने से वह हल्का होता है। साथ ही उसमें विटामिन तथा क्षार आदि का परिणाम अधिक होता है। इस-लिए जहाँ तक सम्भव हो ऐसे ही पशु का दूध लेना चाहिए जो अधिकांश में घास और भूसे पर रखा जाता हो। गेहूँ और दालों का छिलका और गाजर आदि भी उसे खिलाई जा सकती है। कल्प के लिये साधारणतः गाय का दूध लेना चाहिए जिनको क्षय आदि की शिकायत हो उनको बकरी का दूध अधिक लाभ पहुँचाता है। भैंस का दूध अधिक भारी होने से उपयोगी नहीं होता। अगर भैंस का ही दूध मिले तो उसका आधा मक्खन अवश्य निकलवा देना चाहिए।

**विश्राम की आवश्यकता**—कल्प के समय जहाँ तक बने पूर्ण विश्राम करना चाहिए। बोलना, पढ़ना, लिखना, चलना, फिरना आदि कार्य जहाँ तक सम्भव हो कम से कम करने चाहिए। शौच आदि के लिए भी नज़दीक इन्तज़ाम रहना चाहिए। दुग्ध-कल्प में जहाँ तक बन पड़े

www.44Books.com 

दूध पीते बच्चे की ही तरह रहना चाहिए। इस तरह पूर्ण विश्राम का नियम एक विशेष कारण से रखा गया है। शरीर में एक ही शक्ति है, चाहे उसे पढ़ने में लगाइये, चाहे चलने में, चाहे पचाने में। एक समय में एक ही काम अच्छी तरह हो सकता है। भोजन करने के बाद यदि तुरन्त ही चलने या अध्ययन का कार्य आरम्भ कर दिया जाता है तो भोजन बड़ी देर में पचता है। अतः जब दिन भर दूध पीकर पाचन क्रिया को जारी रखा जाता है तो सारी शक्ति पाचन में लगाने के लिए आराम लेटे ही लेटे अच्छा होता है। बैठने में कुछ शक्ति खर्च होती है।

कल्प में अगर बोलना या पढ़ना पड़े तो घन्टे, दो घन्टे के अन्दर दस पाँच मिनट बोला या पढ़ा जा सकता है। जब कल्प समाप्त हो जाय तो टहलना और उसके बाद हलका व्यायाम अवश्य आरम्भ करना चाहिए। धीरे-धीरे भारी करना चाहिए इससे कल्प का लाभ स्थायी हो जाता है।

दुग्ध कल्प कम समय में—दुग्ध कल्प के लिए साधारणतः सात आठ सप्ताह की आवश्यकता होती है। पर कुछ लोगों को इतनी फुरसत मिलनी कठिन होती है। वे एक बार में अधिक मात्रा में दूध लेकर तीन चार बार में ही पूरा दूध पी सकते हैं। ऐसा करने से एक बार में सेर डेढ़ सेर दूध पीना होगा। इतना दूध पीने में दस पन्द्रह मिनट लगाना चाहिए और दूध गरम करके पीना चाहिए। दूध के बरतन को गरम पानी के बरतन में पाँच दस मिनट रखकर दूध गरम किया जा सकता है एक साथ इतना ठन्डा दूध पीना ठीक नहीं रहता। दूध शरीर के ताप के समान गरम होना चाहिए अन्यथा शरीर को उसे अपने ताप के समान गरम करने में शक्ति खर्च करनी पड़ेगी और दूध देर तक पेट में पड़ा रहेगा। दूध के इस प्रकार के प्रयोग के साथ प्रत्येक बार में एक सन्तरा भी लेना चाहिए।

दुग्ध-कल्प में गर्म जल से स्नान—थकान और कमजोरी को दूर

www.44Books.com


करने का एक उपाय 'देर तक गरम जल का स्नान' भी है इस स्नान में गरम पानी का तापमान शरीर के तापमान के बराबर ही होना चाहिए अथवा अधिक से अधिक ११० डिगरी फार्नहाइट। कल्प के समय इस गर्म जल के स्नान का यह असर होगा कि नसों को ताजगी मिलेगी, रक्त-संचार ठीक होगा खाल के छिद्रों में होकर विजातीय पदार्थ अधिक मात्रा में निकलेंगे और सभी माँस पेशियों व अन्य अंगों को विश्राम व ताजगी मिलकर वे अपना कार्य अच्छी तरह करने योग्य बन जायेंगे। इस प्रकार का स्नान शरीर को बिल्कुल कमजोर नहीं बनाता। जैसा कि बहुत लोगों का भ्रम है। हानि बहुत देर तक काफी गरम पानी से नहाने से होती है। साधारण गरम जल से नहीं हो सकती।

मैकफेडेन साहब ने लिखा है कि 'गत महायुद्ध में जिन सिपाहियों को बहुत गहरे घाव लगे थे उन्हे लगातार हफ्तों तक साधारण गर्म पानी में रखा गया, यहाँ तक कि वे जल के अन्दर लेटे ही खाते, पीते और सोते थे। अलबत्ता शिर जल के बाहर मुलायम तकिये पर रखा जाता था।

ऐसा बतलाया गया है कि दो घन्टे साधारण गरम जल के अन्दर सोने से उतना ही विश्राम और ताजगी मिलती है जितनी कि विस्तरों में रात भर सोने से, क्योंकि साधारण गर्म जल शरीर की थकान व सुस्ती को दूर करके उसे ताजा व क्रियाशील बनाने की अद्भुत शक्ति रखता है।

दुग्धाहार के साथ साधारण गर्म जल के स्नान का प्रभाव यह होता है कि सफलता वहुत शीघ्र मिलती है और परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक होते है।

जिस हालत में शरीर के किसी भाग में दर्द, पीड़ा या कड़ापन हो उस हालत में साधारण गर्म जल का यह स्नान तथा लाभकारी होता है। गठिया रोग में तो इस स्नान से मूत्र द्वारा एसिड ( क्षार ) निकल कर रोगी को बड़ा आराम मिलता है। गठिया के कारण होने

www.44Books.com 

वाली जोड़ों व माँस पेशियों की सूजन व पीड़ायें नष्ट हो जाती हैं और इसके विलक्षण प्रभाव से शरीर पहले से अधिक क्रियाशील और विकार रहित बन जाता है।

दुग्धाहार करने वाला व्यक्ति अपना कारोबार करता हो या पर्याप्त व्यायाम व अन्य शारीरिक परिश्रम करता हो तो उस हालत में इसे प्रातःकाल दूध पीना आरम्भ करने के पहले ही अथवा रात को दूध पीना बन्द करने के एक-दो घन्टे बाद यह स्नान करना चाहिए। आशय यही है कि भरे पेट की हालत में स्नान लेना ठीक नहीं।

एक अन्य चिकित्सक की सम्मति है कि पानी में इस प्रकार शुरू में आध घन्टे लेटना चाहिये। फिर नित्य पाँच-पाँच मिनट बढ़ाकर एक घन्टे तक लेट सकते हैं। बीच-बीच में गरम पानी डालते रहना चाहिये जिससे पानी का तापक्रम कम नहीं होने पाये। स्नान ९७ डिग्री फार्नहाइट के जल से शुरू करे और पाँच मिनट के अन्दर ९८-९९ तक कर लें। स्नान करने में जब पाँच मिनट का समय बाकी हो तब पानी का ताप चार-पाँच डिग्री और बढ़ा दें। अगर किसी को पानी की गरमी ज्यादा जान पड़े या सिर में चक्कर-सा आये तो सिर को ठन्डे पानी से धोलें और जब तक गरम स्नान चलता रहे मस्तक पर ठन्डे पानी से भीगा तोलिया रक्खें। नहान से निकल कर बदन को पोंछ कर कपड़े पहन कर आराम करें। साधारण रोगी व्यक्ति स्नान करते समय भी दूध पीवें। बैठने की जरूरत नहीं, टब में लेटे-लेटे ही दूध पिया जा सकता है।

**जुकाम व बलगम गिरना**—दुग्धाहार से किसी-किसी को जुकाम अथवा बलगम गिरने की शिकायत हो जाती है। पर ऐसी शिकायत आरम्भ में ही होती है। जो दो चार दिन या दस-पाँच दिन में मिट जाती है। इससे यह प्रकट होता है कि उस आदमी के शरीर में विजातीय पदार्थ बहुत अधिक परिमाण में इकट्ठा हो गया है और अब दुग्धा-

www.44Books.com 

हार के प्रभाव से रक्त क्रियाशील बनकर उसे शीघ्रता पूर्वक बाहर निकालने का प्रयत्न कर रहा है।

जो लोग प्रतिदिन मांस, अण्डे, सफेद चीनी, मैंदा की रोटी, पालिश किया चावल, मिठाई, मसाले आदि खाते हैं, उनके शरीर में इन पदार्थों के पूर्ण तरह से न पच सकने के कारण विजातीय द्रव्य बहुत अधिक परिमाण में इकट्ठा हो जाता है। जिससे रक्त गाढ़ा व क्षारयुक्त हो जाता है। दूध इन विकारों को बहुत शीघ्र दूर करता है क्योंकि इनमें रोग निवारक और खटाई उत्पन्न करने वाले तत्व बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। जुकाम या बलगम गिरने की शिकायत उस शरीर में पैदा ही नहीं हो सकती। जिसके मल विसर्जन करने वाले अङ्ग नियमानुसार अपना काम कर रहे हैं व शरीर में जितना भी मल बन रहा है। उसे बाहर निकाल देते हैं।

अगर मनुष्य के शरीर का सब अनावश्यक विषाक्त पदार्थ शरीर के विभिन्न अङ्ग—खाल, मलद्वार, इन्द्रिय, नाक, मुँह आदि द्वारा निकलता रहे तो जुकाम आदि रोग पैदा ही नहीं हो सकते। जब यह मल उचित से अधिक परिमाण में उत्पन्न होने लगता है और मल- निवारक अङ्ग स्वाभाविक रीति से उसे नहीं निकाल पाते तो शरीर उसे निकालने के लिए अङ्गों की मदद लेता है, पर यह अच्छा नहीं है। ऐसी ही अवस्था में हम अपने को रोगी समझ लेते हैं। बलगम चाहे नाक से गिरे या शरीर के और किसी भाग से पर उसका उद्देश्य शरीर के भीतरी भाग की सफाई करना ही होता है। बलगम नाक व मुँह की बजाय शौच और मूत्र के द्वारों में होकर भी निकल सकता है।

जिन लोगों के शरीर में यह बलगम बहुत दिनों से इकट्ठा होता रहता है, उन्हें पुराने जुकाम की शिकायत बतलाई जाती है। वास्तव में बलगम स्वयं कोई रोग नहीं है, बल्कि वह शरीर का एक अनावश्यक हानिकारक पदार्थ है, जो शरीर में बहुत समय से धीरे-धीरे इकट्ठा

www.44Books.com


होता रहता है और बार बार उसके बाहर निकलते रहने के कारण उन अङ्गों में कहीं-कहीं कुछ सूजन पैदा हो जाती है। दूध की रोग निवारिणी शक्ति जब इसे शीघ्रता पूर्वक निकालने का प्रयत्न करती है तो हमको कई रोगों के उभार का अनुभव होता है और कष्ट भी जान पड़ता है, पर उससे घबराना नहीं चाहिए।

दुग्ध चिकित्सा से चार-छः सप्ताह के भीतर ऐसी सभी शिकायतें और नये रोग स्थाई रूप से आराम होते हैं। हाँ क्षय जैसे रोग में इतनी शीघ्र सुधार या सन्तोष जनक परिणाम होने की आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि यह रोग साधारण नहीं है और इसे दूर करने के लिए महीनों और कभी-कभी बरसों तक प्रयत्न जारी रखना पड़ता है। क्षय—रोग में दुग्धाहार के साथ और भी प्राकृतिक उपचार करना आवश्यक होता है, जैसे ठण्डा जल-वायु, हलका व्यायाम, साफ ताजा हवा, चिन्ताओं का सर्वथा परित्याग और आर्थिक झंझटों से मुक्ति। ये सब उपाय क्षय के दूर होने में बड़ी सहायता करते हैं।

सबसे पहले रक्त की हालत सुधारनी चाहिए क्योंकि शुद्ध रक्त ही रोगों का मुकाबला करके शरीर को शक्ति प्रदान कर सकता है। ऐसा होने पर फेफड़ों अथवा हड्डियों और आंतों की हालत का बिगड़ना बन्द हो सकता है और रोगी आरोग्य पथ पर अग्रसर हो सकता है। हमेशा ध्यान में रखिये कि दूध के आहार से मल-निवारण अधिक होता है और अकसर कफ इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि रोगी को कष्ट होने लगता है। पर इससे यही समझना चाहिए कि फेफड़ों के अणु अधिक वेग से काम करने लगे हैं और उन गले हुए भागों को बाहर फैंक रहे हैं जिन्हें दूध के रोग नाशक प्रभाव ने ढीला कर दिया है। जो कफ पहले जमा हुआ और सख्त रहता है वह दूध के प्रभाव से ढीला होकर आसानी से बाहर निकल जाता है।

**दुग्धाहार और दांत**—कुछ लोग दुग्धाहार के खिलाफ यह दलील दिया करते हैं कि दूध के एक मात्र आहार से दांत मुलायम हो जाते हैं

www.44Books.com


और गिरने लगते हैं। वे लोग यह भी कहते हैं कि दूध से पायरिया का रोग और मसूड़े फूलने की शिकायत पैदा हो जाती है। पर यह कथन स्पष्टतः भ्रम पूर्ण है, क्योंकि दूध में चूना और दूसरे खनिज लवण बहुत अधिक मात्रा में होते हैं जो दांतों की बनावट को मजबूत बनाते हैं। जो लोग दांतों और हड्डियों को मजबूत बनाना चाहते हैं उनके लिए दूध एक अत्यन्त उपयोगी और श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ है।

जब दुग्धाहार के पहले लम्बा उपवास कर लिया जाता है तो उसके कारण कभी-कभी दाँतों के खोखलेपन की शिकायत हो जाती है। इसका कारण यह है कि लंघन होने से शरीर को खुराक नहीं मिलती, इससे शरीर दाँतों से ही चूना और क्षार लेने लगता है ताकि उसके द्वारा रक्त की शुद्धता व मर्यादा को कायम रखा जा सके। दूध कल्प के समय आवश्यकता से बहुत कम दूध पीना भी इस प्रकार विकार उत्पन्न कर सकता है।

इन दोनों समस्याओं को सहज में सुलझाने का तरीका यह है कि उपवास लम्बा न करके सिर्फ दो तीन दिन का ही किया जाय। जो लोग क्षीण व दुर्बल शरीर हों वे एक-आध दिन का लंघन करें और वह भी फलों का रस लेकर। दूसरा उपाय यह है कि वे पूर्ण दुग्धाहार का प्रयोग करें अर्थात् हर आध-आध घण्टे मे दूध लेते रहें और जब तक जागते रहें बराबर १२ या १४ घन्टे दूध पियें।

बढ़ा हुआ व कमजोर मेदा—कुछ लोग शङ्का करते हैं कि जब पेट की भोजन की थैली का आकार पहले से ही बढ़ा हुआ है और वह कमजोर है तो उस हालत में अधिक दूध पीने का परिणाम उल्टा होगा और पेट की थैली और भी बढ़ जायगी। इस कथन में कुछ सचाई अवश्य है। जो लोग दूध की खुराक पूर्ण मात्रा में लेते हुए काम करते रहते हैं और अधिकांश समय खड़े रहते हैं तो उनको दुग्धाहार से उपरोक्त शिकायत होने की बहुत कुछ सम्भावना है। क्योंकि ऐसी हालत में दूध धीरे धीरे पचता है और पेट में बहुत सा इकट्ठा पड़ा

www.44Books.com


रहता है। इससे बचने के दो उपाय हैं। या तो आप पूर्ण रूप से आराम करें जिससे शरीर की सब शक्ति दूध के पचाने में ही लग सके, अथवा आप दूध कम मात्रा में लें और वजन बढ़ाने की चिन्ता न करें। ऐसे व्यक्तियों को, ३ सेर ४ सेर तक दूध प्रतिदिन पर्याप्त होता है।

तीव्र रोग, मोतीझरा व आंतों के रोग—अधिकांश तीव्र रोगों, खास कर मोतीझरा, आंतों की पीड़ा और बड़ी आँत की सूजन में पूर्ण विश्राम की बहुत अधिक आवश्यकता है उस समय किसी भी तरह खुराक न खाना ही उत्तम है। पर आँतों की पुरानी सूजन या पीड़ा में, एवं डिसाइटीज में दुग्धाहार विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है। मसाने ( मूत्र की थैली ) की पुरानी बीमारियों में मसाने की दीवारें कुछ मोटी हो जाती हैं और झिल्लियाँ जीर्ण होती जाती हैं, जिससे पेशाब की थैली सुकड़ कर छोटी हो जाती है नतीजा यह होता है कि साधारण आहार करने पर पेशाब बार-बार थोड़ी-थोड़ी देर में होता है। इसके सिवाय कोई कष्ट दुग्धाहार से उत्पन्न नहीं होता लेकिन अगर पेशाब की थैली का द्वार अधिक सूजा हुआ हो तो बहुत अधिक पीड़ा हो सकती है। पेशाब करते समय पीड़ा या कष्ट होने का खास कारण यह होता है कि पेशाब में यूरिक एसिड की मात्रा बहुत अधिक होती है और जब यह पेशाब की थैली के मुँह की कोमल व सूजी हुई सतह से गुजरता है तो पीड़ा जान पड़ती है। दुग्धाहार से पेशाब पहले से कई गुना होता है, इससे तकलीफ बढ़ जाती है। पर हिम्मत रख कर अगर इलाज जारी रखा जाय तो दूध के प्रभाव से यूरिक एसिड शीघ्र ही निकल जाता है और पेशाब गाढ़ा और पीला होने के बजाय साफ, पतला और दुर्गन्धि रहित उतरने लगता है।

स्त्री रोग—लगभग सभी स्त्री रोगों में दूध बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। अनेक स्त्रियों के गर्भाशय, योनि आदि अङ्गों में सूजन होकर स्थाई रूप धारण कर लेती है और उस स्थान में रक्त के अधिक इकट्ठा हो जाने से मासिक धर्म के समय बड़ी तेज पीड़ा होती है।

www.44Books.com


इसलिए मासिक धर्म समाप्त होने ही तत्काल दुग्ध-चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये । साथ ही उपवास भी आरम्भ में या मध्य में करना चाहिये ।

दुग्ध-चिकित्सा तीन सप्ताह तक की जाय और फिर बन्द कर दी जाय। उस समय लंघन या फलों के रस पर रहकर उपवास किया जाय । जब दुबारा मासिक-धर्म समाप्त हो जाय तो फिर दुग्ध चिकित्सा शुरू कर दी जाय। इससे रजोधर्म सम्बन्धी पीड़ाएँ बन्द हो जायेंगी क्योंकि दुग्धाहार से रक्त में तरल अंश का संचार अधिक होगा और रक्त के दबाब से होने वाली पीड़ा रुक जायगी। दुग्धाहार के प्रभाव से मासिक धर्म नियमित होने लगेगा और गर्भाशय तथा योनि सम्बन्धी समस्त विकार और पीड़ाएँ मिट जायेंगी ।

संधि वात और गठिया—दुग्ध चिकित्सा के समाप्त होते समय प्राय: लोगों को संधि वात या गठिया अथवा माँस पेशियों के रुक जाने के दर्द उभर आते हैं। ये प्राय: उसी अंग में होते हैं जिनमें पहले हुये थे। यदि रोगी दृढ़ता पूर्वक इलाज जारी रखे और दर्द या पीड़ा पर ध्यान न दे तो आमतौर पर दर्द का दौरा ४८ घण्टे में अवश्य बन्द हो जायगा। कुछ दिन बाद दूसरा दौरा हो सकता है, पर यह पहले दौरे से हल्का और कम कष्टदायक होगा और बहुत थोड़े समय तक रहेगा। इन दर्द या पीड़ाओं का कारण यह होता है कि रक्त का संचार बहुत बढ़ जाता है और उसमें शरीर का विजातीय द्रव्य अधिक परिमाण में अंगों मे निकल कर मिल जाता है ।

पेशाव में एसिड का बहुत मात्रा में भर जाना अथवा शरीर में विषाक्त पदार्थों का इकट्ठा हो जाना ही गठिया या संधि वात का मूल कारण होता है। दुग्धाहार से रक्त संचार में वृद्धि होने से यह एसिड या विषाक्त पदार्थ वेग से उन पेशियों में फैल जाते हैं, जिनमें रक्त संचार पहले बहुत धीमा था ।

दूसरा कारण यह है कि पहला धुला हुआ रक्त विषैले तत्वों को

www.44Books.com


सहज ही पुनः सोख लेता है या अन्दर मिला लेता है, और अपनी स्वाभाविक गति के समय यह पुरानी पीड़ित नसों को उत्तेजित करके पहले की तरह दर्द पैदा करते हैं। पर इतना याद रखना चाहिये कि, दुग्धाहार के प्रयोग से संधि वात के विषैले पदार्थों का शरीर से बाहर निकलना एक दिन या एक सप्ताह का काम नहीं है। इसमें एक मास या कई मास लग सकते हैं।

दूध में दूषित पदार्थों का सर्वथा अभाव है जिनसे कि यूरिक एसिड बनता है। ये दूषित पदार्थ तो माँस, चाय, काफी आदि पदार्थों में ही अधिक पाये जाते हैं और इन्हीं से गठिया आदि की उत्पत्ति होती है।

**दुग्धाहार से साधारण आहार पर आना**—दुग्धाहार को छोड़ कर फिर स्वाभाविक आहार पर आते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है, चाहे रोग का इलाज हो चुका हो और शरीर में बहुत कुछ सुधार हो गया हो। बहुत से लोगों को दुग्धाहार से होने वाले लाभ स्थाई इसी से नहीं होते कि वे लोग दुग्धाहार समाप्त होने पर एकाएक फिर शेष खुराक खाने लग जाते हैं,

दुग्धाहार के प्रभाव में शरीर के भीतरी अंग स्वाभाविक स्थिति में आ जाते हैं। उस समय गलत ढंग से आहार-विहार करने का प्रभाव उन पर और भी खराब पड़ता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि जिन बदपरहेजियों से पहले रोग उत्पन्न हुआ था, अगर दुग्धाहार से स्वस्थ होने पर फिर उनको किया जायगा तो रोग और भी जल्दी उत्पन्न हो सकता है।

इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि जब दुग्धाहार का छोड़ने का समय आ जाय तो उसे क्रमशः और धीरे धीरे कम किया जाय। उदाहरण के लिये दोपहर तक पहले के समान दूध पर रहा जाय और फिर शाम तक केवल पानी पर रह कर शाम को थोड़ा सा हरे शाकों का सलाद या कुछ शाक का रसा और थोड़ी सी गेहूँ की सूखी रोटी ली जाय। इस क्रम को तीन दिन से एक सप्ताह तक जारी

www.44Books.com


रखना चाहिये और शाकों तथा रोटी की मात्रा को धीरे धीरे बढ़ाते जाना चाहिये। इस प्रकार आधे समय दूध और आधे समय ठोस भोजन लेकर आप दस-बीस दिन भी निकाल सकते हैं। बीच-बीच में किसी दिन दूध न लेकर दोनों समय ठोस भोजन भी लिया जा सकता है। पर इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि आहार गरिष्ट या प्रकृति विरुद्ध या संयोग विरुद्ध न हो।

प्रातः काल एक सेर साधारण दूध या मक्खन निकले हुये दूध का नाश्ता करें और चाहें तो साथ में थोड़े फल या हल्की रोटी ले लें। अगर नाश्ता और सायंकाल का भोजन हल्का किया जायगा तो दिन भर का भोजन बहुत कुछ मर्यादित हो सकेगा। फिर दोपहर के पहले शाकाहार किया जा सकता है और दोपहर के बाद सूखे मेवे खाये जा सकते हैं। अगर साधारण भोजन आरम्भ करने के बाद भी आप बहुत दिनों तक काफी तादाद में दूध पीते रहें तो इससे शरीर को बड़ा लाभ पहुंचता है। ऐसा करने से उन व्यवस्थाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी जिनसे पहले रोग पैदा हुआ था।

अधिकांश लोगों को दुग्धाहार से अपने दैनिक ठोस भोजन पर आ जाने पर बड़ी प्यास लगा करती है क्योंकि उस समय तरल पदार्थ पहले से बहुत कम मात्रा में पेट में जाते हैं। ऐसी दशा में प्यास लगने पर यथेच्छा पानी पीना चाहिए। ठोस भोजन से उत्पन्न होने वाली प्यास को दूध से नहीं बुझाना चाहिये। फलों का रस भी पिया जा सकता है। हर हालत में इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि दूध और ठोस आहार मिल कर आवश्यकता से अधिक न हो जायें। पाचन शक्ति के अनुकूल भोजन करने से ही आगामी खराबियों से बचा जा सकेगा।

**आयुर्वेद के अनुसार दुग्धचिकित्सा**—अनेक वैद्य भी आयुर्वेद पद्धति के अनुसार दूध का प्रयोग किया करते हैं। वे दूध के साथ कुछ औषधियों का भी प्रयोग करते हैं। और दूध में भी औष-

www.44Books.com


धियों का प्रभाव लाना लाभकारी समझते हैं। इस पद्धति के अनुसार दुग्ध-कल्प का काल २१ दिवस, ४२ दिवस अथवा ९० दिवस ( ३ सप्ताह- ६सप्ताह- ३मास ) का रोग और रोगी का बलाबल देखकर निश्चित किया जाता है। दुग्ध-कल्प के लिये ठंड के दिन उत्तम हैं, वर्षा के दिन मध्यम और गर्मी के दिन कनिष्ठ हैं।

अशक्त रोगी को लगभग ५ से १० तोला एक बार में देकर दिन भर में डेढ़ सेर तक दूध देना चाहिये। मध्यम बल वाले को ८-१० बार में २॥ सेर तक और सशक्त रोगी को २०-३० तोला के हिसाब से ८-१० बार में ४ सेर तक दूध दे सकते हैं। सुबह ६ बजे से १ बजे तक और शाम को ६ बजे से ९-१० बजे तक १-१ या १॥-१॥ घन्टे के अन्तर से दूध देना चाहिये। क्रमशः रोजाना १०-२० तोले भूख के अनुसार बढ़ाते जायें। दूध परिणाम में कम लेने से शौच नहीं होता अथवा कड़ा और सूखा हुआ होता है। इसी प्रकार दूध आवश्यकता से अधिक लेने से जुलाब हो जाता है। दूध में मीठा मिलाने या गरम दूध पीने से प्यास बहुत लगती है। इसलिए दूध को ठंडा करके बिना खांड़ चीनी मिलाये पीना चाहिते।

दूध को एक दो उफान आने तक गरम कर पीना चाहिए। गरम करते समय उसे हिलाते रहें जिससे मलाई अलग न होने पावे। इसलिये दूध को ठंड़ा होने तक चलाते रहें। अत्यन्त अशक्त लोगों को मलाई अलग करके दूध देना चाहिये। दूध को एक बार गरम करके गरम पानी में रखें जिसमे बार-बार गरम करने की जरूरत न पड़े। अधिक उबालने से दूध कठिनता से पचने वाला हो जाता है।

वर्तमान समय में जैसा दूध साधारणतः मिलता है उसे उबालकर पीना ही ठीक है। अशक्त रोगी को धारोष्ण दूध देना लाभकारी नहीं होता। शक्ति बढ़ने पर और ज्वर आदि के शमन हो जाने पर धारोष्ण दूध काम में लावें, इससे रक्त-वृद्धि बहुत ज्यादा परिमाण में होती है।

दूध का कल्प शुरू करने के पहले ४-५ दिन दूध चावल अकेला

www.44Books.com



खाने की आदत डालें। फिर भात कम करके दूध का परिणाम बढ़ाते जायें। दूध-चावल पूरा होने पर भी १-२ सप्ताह तक अधिक दूध पर रहकर क्रमशः अन्न का सेवन समाप्त करें।

दुग्ध-कल्प में गौ का दूध सबसे उत्तम है, बाद में बकरी का है। भैंस का दूध तो अभाव में ही लेना चाहिये। गौ का दूध रस और विपाक में मधुर, शीतल है, जीवन शक्ति का बढ़ाने वाला, बलवर्द्धक, अतिपथ्य और रसायन गुण युक्त है।

बकरी का दूध क्षय रोगी को विशेष हितकर है। यह पचने में हल्का, कास, श्वाँस और पित्त के दोष का नाश करता है। क्षय, जन्तु-अन्य क्षय, आंत्रिक क्षय में फलदायक है। आयुर्वेद शास्त्र में सुबह और सायंकाल के दूधों में गुण का भेद बताया गया है, और सफेद, लाल, काली गौओं के दूधों का भेद भी दर्शाया है।

दूध अन्न की अपेक्षा पचने में हल्का है और अन्न व औषधि दोनों का कार्य करता है। शहर की गाय-भैंसों को व्यायाम कम मिलता है। वे गाँव की अपेक्षा कम चलती-फिरती हैं। इसलिये उनको सोया १० तोला, नमक ७॥ तोला और गंधक आधा तोला मिलाकर सुबह शाम खिला देना चाहिये। छोटे बच्चों को, जिन्हें दूध पीने से पहले दस्त आने लगते हैं, उपरोक्त औषधि खाने से भी गाय का दूध लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ संचित संहिता में लिखा है कि प्रथम बार की व्याई हुई बाखरी गाय अथवा उड़द के पत्ते खाने वाली गाय का दूध बल बढ़ाने हेतु अत्यन्त उत्तम है।

नीबू के रस और भेड़ के दूध की सात-सात भावना देकर शुद्ध किया हुआ हिंगुल ३ तोला लेकर उसकी ३० मात्रा बनाले। फिर उड़द की दाल बिना छिलके की २-३ घन्टे पानी में भिगोकर सुबह के वक्त उस दाल में उपरोक्त औषधि की एक मात्रा मिलाकर बकरी को खिला देवे। इसी प्रकार एक महीने में ३० मात्रा खिला देवे।

www.44Books.com 

आठ दिन बाद पारे का असर बकरी के दूध में आ जाता है। सुबह शाम इसी दूध को एक मास तक पीवे। साथ में दूध में कौंच के बीज का चूर्ण एक तोला मिलाकर खावें और गेहूं की रोटी, चावल, घी, दूध लें। नमक, मिर्च, खटाई सब बन्द करदें। ऐसी विधि से पारद का सेवन दुग्ध-कल्प को बहुत प्रभावकारी बना देता है। अन्य रोगों में दुग्धाहार के साथ औषधियों का प्रयोग इस प्रकार किया जाय—

१—ग्रहणी और जलोदर में पंचामृत पर्पटी।

२—आंत्रिक क्षय में स्वर्ण पर्पटी।

३—जीर्ण ज्वर, मन्दाग्नि और क्षय में स्वर्ण वसन्त मालती।

४—शोथ, कमला, उदर रोग में आरोग्य वर्धनी रस।

५—उदर, जीर्ण ज्वर, प्लीहा वृद्धि में वर्धमान पिप्पली प्रयोग।

६—संग्रहणी व अतिसार में दुग्धवटी।

७—रक्त विकार कुष्ठ में आरोग्य वर्धनी रस।

८—सूतिका रोग और क्षय में नारियल की पोई की औषधि।

९—रसायन के लिये बिडंग, यष्टीमधु कल्प।

कल्प से लाभ हुआ तब समझना चाहिये जब नीचे लिखे लक्षण प्रकट हों—

१—रोग का नाश होकर ज्वर आदि बिल्कुल न रहे।

२—शक्ति और स्फूर्ति आवे, चलने में थकावट न जान पड़े।

३—भूख अच्छी लगे।

४—मल बँधा हुआ बिना कष्ट के दिन में एक दो बार समय पर होवे।

५—गाढ़ निद्रा भली प्रकार आवे।

६—वजन क्रम से बढ़े।

रोगी शान्त, एकान्त, साफ हवा वाले मकान में रहे जहां ज्यादा आवाज व शोर न होता हो। रोगी को पूर्ण विश्राम दें और कभी-कभी हल्का मर्दन भी लाभकारी है। अंगूर, पके आम, अनार, लौंग, इलायची

www.44Books.com


का सेवन किया जा सकता है। दूध न पचता हो तो सोड़ा वाटर अथवा सैंधा-नमक, जल में मिलाकर दें।

अपथ्य—सब तरह के अम्ल पदार्थ अपथ्य हैं। हरा आमला व सन्तरा ले सकते हैं। दूध के बने पदार्थ पेड़ा, बरफी, रबड़ी आदि न खायें। दुग्ध-कल्प के समय अन्न खाने के समय जैसी शक्ति नहीं रहती, कभी-कभी जुलाब भी हो जाता है, अतः व्यायाम बिल्कुल न करें। विशेष कर चिन्ता का त्याग करें, पानी जहाँ तक हो कम पीना चाहिये। अम्ल (खट्टा) दूध न पीयें, न बरफ, आइसक्रीम आदि खायें।

कल्प के बाद के नियम—सात अथवा १४ दिन तक दूध लें, रोग अधिक जोरदार हो तो २१ या ४२ दिन तक दुग्ध-कल्प करें। अत्यन्त बड़ा रोग हो तो ६० दिन कर सकते हैं। दूध का पथ्य छोड़ने में जल्दी न करें और न एक दम बन्द कर देवें। बाद में नित्य एक बार गरम भात खाना शुरू करें। जितना चावल स्वाभाविक रूप से खाया जा सकता हो उसका एक चौथाई खावें। चावल भी पहले मांड और पीने के लायक पतले रूप में शुरू करें, बाद में नरम भात लें। ज्यों-ज्यों अन्न पचता जाये त्यों-त्यों उसका परिणाम बढ़ाते जायें और दूध कम करते जायें। छः सात दिन बाद सुबह शाम दो बार भात लें। भांत में थोड़ा सा घी, मूँग भून कर उसका पतला यूष (रसा) दें। घी, जीरे का छोंक भी लगा सकते हैं। क्रमशः बढ़ाते जायें, मूँग के सिवाय अन्य दाल न खायें। परबल, विम्बीफल, लौकी, जमीकन्द का पत्ता शाक बनाकर खायें।

कल्प में पानी जहाँ तक हो शृत शीतल ( उबाल कर ठण्डा किया हुआ ) पीवें। धान और बाजरे की खील खा सकते हैं। शक्ति बढ़ने पर बाजरे की अथवा गेहूँ की रोटी थोड़ी थोड़ी शुरू करें। तेल में तले पदार्थ, भारी भोजन, मिष्ठान्न, घी में तले पदार्थ न खावें। जब अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त हो जाय और भली भाँति पाचन होने लगे, तब ये पदार्थ बहुत ही अल्प परिणाम में लेना आरम्भ करें।

www.44Books.com


दुग्ध-कल्प में उपद्रव—(१) शुरू में कितने ही रोगियों को २-४ पतले दस्त हो जाते हैं। इनसे घबराने की जरूरत नहीं, अपने आप बन्द हो जाते हैं। कभी जरूरत पड़े तो लवंगादि चूर्ण २-३ माशा लें।

(२) अगर उल्टी हो तो कपूर कामली (शठी) के पानी से बनाई २-३ रत्ती की गोलियां दें।

(३) प्यास ज्यादा जान पड़े तो नारियल का पानी दें अथवा दूध का अर्क खींचकर थोड़ा-थोड़ा पिलावें।

(४) पेट में वायु बढ़ने में सन्तरा का रस और नीबू का रस थोड़ा-थोड़ा दें।

(५) सोंठ का तुरन्त का पिसा हुआ चूर्ण २ माशे, कन्दर्प भस्म ४ रत्ती, मिश्री दो माशा मिला कर दूध के साथ देवें। अथवा अग्नि तुन्डी वटी १ रत्ती देवें। साथ ही आवश्यकता जान पड़े तो इन्द्र जौ ५ तोले, हींग आधा तोला, कपूर चौथाई तोला कूट कर रक्खे। इसमें से ३ या ६ माशे चूर्ण पानी में बारीक पीस कर गरम करके नाभि के आसपास पेट पर १-२ बार लगावें। इससे अपान वायु निकल कर पेट हल्का हो जायगा।

(६) कभी मल बहुत सूख कर कड़ा हो जाता है तो थोड़ा मक्खन ( नवनीत ) चाट लें, अथवा दूध में आधा या एक तोला घी मिला कर पीवें। अथवा मुनक्का १-२ तोला खालें। अथवा सनाय १ भाग मुलेठी २ भाग का चूर्ण मिला कर ३ माशा की मात्रा में रात्रि को सोते समय लेवें।

दूध पचाने की विधि—अगर दूध पीते ही मल त्याग करने की इच्छा हो जाती हो तो सुहागा ५ तोला चिरायता के आधे सेर पानी में अथवा साधारण पानी में ही घोल कर पकाएँ। जब पानी खुश्क होकर सुहागा भुन जाये तो उसको खरल में बारीक पीस कर किसी शीशी में सँभाल कर रखे। आवश्यकता होने पर इसमें से दो रत्ती सुहागा आधा

www.44Books.com 

सेर दूध में घोलकर पिला दे। इससे दूध भी हजम हो जायगा और क्षुधा भी शांति हो जायगी।

दुग्ध कल्प की **शोभा**—इस प्रकार जो व्यक्ति विधि पूर्वक दूध का सेवन करता है वह सब प्रकार के पुराने और नये रोगों से छुटकारा पाकर स्वाभाविक स्वास्थ्य प्राप्त कर लेता है। हमारे देश में और विदेशों में भी दुग्ध-चिकित्सा के अनगिनती उदाहरण मिलते हैं। जो रोगी वर्षों से कष्ट पा रहे थे और अनेक प्रकार की चिकित्साएं करके निराश हो चुके थे, दूध की चिकित्सा ने उनको नवजीवन प्रदान किया है। इस प्रकार का सबसे मशहूर उदाहरण अमरीका के मि० राकफेलर का है, जो कुछ समय पहले संसार का सबसे बड़ा धनवान व्यक्ति माना जाता था। भोजन सम्बन्धी अनियमितता के कारण उसकी पाचन शक्ति बड़ी खराब हो गयी थी और उसे सदा अजीर्ण की शिकायत बनी रहती थी। जब सबसे बड़े डाक्टरों के इलाज से भी कोई फायदा नहीं हुआ तब उसने एक विज्ञापन छपाकर घोषणा की कि जो चिकित्सक उसकी पाचन शक्ति को पुनः स्वाभाविक रूप में ला देगा उसे दस लाख डालर (लगभग चालीस लाख रु०) पुरस्कार दिया जायगा। पुरस्कार के लोभ से अनेक बड़े-बड़े चिकित्सकों ने तरह-तरह की दवाओं और इन्जेक्शन आदि से उसकी चिकित्सा की, पर सफलता प्राप्त नहीं हुई। कुछ दिन को बीमारी दूर हो जाती, पर थोड़े दिन बाद फिर वही शिकायत दिखलाई पड़ती। अन्त में एक प्राकृतिक चिकित्सक ने मक्खन निकले हुए दूध का कल्प कराके उसके पेट की समस्त खराबियों को दूर कर दिया और उसके बाद वह काफी समय तक स्वस्थ्य और कार्य क्षम रह कर जीवित रहा।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और साहित्य सेवी श्री भगवान दास केला ने कुछ समय पहले एक प्राकृतिक चिकित्सालय में दुग्ध कल्प का प्रयोग किया था। उन्होंने एक लेख में अपना अनुभव प्रकट करते हुए बतलाया है कि "मैं अपने जीवन में अनेक बार बीमार पड़ा हूँ। पर

www.44Books.com 

हर बार काम चलाऊ इलाज से ही काम चला लिया। जब किसी बीमारी में विशेष रूप से ग्रस्त हुआ तभी कुछ दवा दारू की। यों तो कभी-कभी एलोपैथी पद्धति की भी शरण ली और इन्जेक्शन लगवाये, किन्तु साधारणतया मैं वैद्यक को पसन्द करता रहा। पिछले कुछ वर्षो से होम्योपैथी तरफ आकर्षण बढ़ता गया। प्राकृतिक चिकित्सा की बात तो थोड़े समय से ही मन में आने लगी। इस वर्ष अनायास इसके अनुभव का अवसर आ गया।

मार्च १९५१ की बात है। मैं डाक्टर किशनलाल जी अग्रवाल के निरीक्षण में प्राकृतिक चिकित्सा कराने के लिये प्राकृतिक चिकित्सालय (गाँधी नगर जयपुर) में आ गया। यह संस्था अपने एक वर्ष से भी कम समय के जीवन में विलक्षण कार्य कर चुकी है। मेरी दमे की शिकायत तो यहाँ के उपचार से एक सप्ताह में जाती रही। पर विशेष स्वास्थ्य लाभ करने के लिये मैंने यहाँ और भी रहना आवश्यक समझा।

दूध कल्प करने के पूर्व एक दिन ता० ९ को उपवास किया गया, जिसमें केवल नीबू का रस मिला हुआ पानी दिया गया। १० जून से दूध दिया जाने लगा। उस दिन सवेरे के दूध का परिमाण २ सेर और शाम को तीन पाव था। यह एक एक घन्टे के अन्तर से पाव-पाव भर की मात्रा में दिया गया। क्रमशः इसकी मात्रा बढ़ाई गई। ता० १४ को लिया जाने वाला दूध का परिमाण ४ सेर था—२॥ सेर सवेरे और १॥ सेर शाम को। १८ ता० को यह परिणाम ५ सेर तक पहुंच गया ३॥ सेर सवेरे और १॥ सेर शाम को। ५ जुलाई तक यही परिमाण रहा। ६ जुलाई को यह बढ़ाकर ५॥ सेर किया गया। कुछ आदमी दूध का दैनिक परिमाण १०-१२ सेर तक पहुँचा सकते हैं, पर दो दिन के मेरे अनुभव ने बतला दिया कि मेरे लिये तो ५॥ सेर भी बहुत अधिक है, मैं इतना दूध नहीं पचा सकता। इसलिये ता० ८ और ९ को ५-५ सेर ही लिया गया और ता० १० से तो ४॥ सेर ही

www.44Books.com 

करना पड़ा जो ता० १८ तक जारी रहा। पीछे इस को क्रमशः घटा कर ता० २० को २ सेर पर आ गया और ता० २२ को दूध कल्प पूरा करके ता० २३ से एक बार भोजन लेना शुरू कर दिया गया। इस प्रकार दूध कल्प ता० १० जून से २२ जुलाई तक कुल ४३ दिन रहा। कल्प के दिनों में भी कभी कभी नीबू चूसा जाता था और आम भी लिये जाते थे जो आधा सेर से ज्यादा किसी दिन नहीं हुये।

"कल्प आरम्भ करने के समय ता० १० जून को मेरा वजन ८२ पौण्ड था, यह धीरे-धीरे बढ़ता गया। कभी-कभी कई दिन तक वजन एकसा रहा। किसी दिन आधा पौण्ड बढ़ा और किसी दिन एक पौण्ड। ता० २२ जुलाई को वजन १०० पौण्ड था, अर्थात् वजन में १८ पौण्ड की वृद्धि हुई। इस प्रकार कल्प पूरा हो गया और अब स्वास्थ्य काफी अच्छा है।"

दूध कल्प के सम्बन्ध में मध्य-प्रदेश के इनकम टैक्स विभाग के रिटायर्ड कमिश्नर श्री एल० एम० आर० खेर का अनुभव विशेष महत्वपूर्ण है जिसे स्वास्थ्य-प्रेमी पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है—

"मैं सन् १९३७ के अप्रेल मास में तीव्र ज्वर से आक्रांत हुआ जिसे चिकित्सकों ने इन्फ्लुऐंजा बतलाया। इसके साथ ही मेरा फेफड़ा भी पीड़ित जान पड़ा। उस समय मैं दमोह में था, जो मध्य प्रदेश के सागर जिले में एक तहसील है। एक एलोपैथिक डाक्टर के परामर्श के साथ स्थानीय वैद्यों ने मेरी चिकित्सा की। वे डाक्टर मेरे सम्बन्धी थे। दो सप्ताह में शरीर का तापमान साधारण अवस्था में पहुँच गया और फेफड़े का रोग भी जाता रहा। किन्तु मेरे शारीरिक वजन में २८ पौण्ड ( १४ सेर ) की कमी हो गई। तब वैद्यों ने मुझे साधारण पथ्य बताया किन्तु उन्होंने देखा कि यकृत ठीक काम नहीं कर रहा है। मई मास के दूसरे सप्ताह में इस कारण औषधि बदल दी गई। मुझे तरल पदार्थ पथ्य में दिया जाने लगा। मुझे अधिक से अधिक मट्ठा

www.44Books.com 

दिया जाने लगा। जितना कि मैं पचा सकता था। औषधियाँ कुमारी आसव और स्वर्ण पर्पटी थीं। स्वर्णपर्पटी देने का प्रयोजन भूख लगना और कुमारी आसव का प्रयोजन क्रिया शीलता को उत्तेजना देना। था। मुझे चलने फिरने की स्वतन्त्रता दी गई, किन्तु इसके लिये मुझ में यथेष्ट शक्ति का अभाव ही था, अतएव थोड़ा ही चल-फिर पाता। प्रकाश और वायु पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। रसदार फलों को लेने की मुझे अनुमति मिली थी।

३६ दिन तक चिकित्सा चलती रही, पर मैं कठिनाई से ३॥ सेर मठा ले पाता। प्रति सप्ताह या १० वें दिन मेरा वजन देखा जाता, पर जो वजन कम हो गया था उसकी पूर्ति का कोई लक्षण दिखलाई न पड़ा और न यकृत की क्रिया में अन्तर पड़ा। मठे का प्रयोग रोक दिया गया और मुझे साधारण रूप का शाकाहार दिया जाने लगा। यकृत अवरुद्ध ही बना रहा अतः चिकित्सा जारी रखना मैंने व्यर्थ समझा मैंने इसे बन्द कर दिया और प्रकृति के सहारे रहना निश्चय किया। तत्पश्चात् उपर्युक्त डाक्टर के परामर्श से ताजा जिगर का शोरवा लेना प्रारम्भ किया। इससे लाभ तो कुछ भी न हुआ, बल्कि तीन सप्ताह बाद मेरे सिर में फोड़े हो गये जिनसे कष्ट होने लगा। डाक्टर ने इसका कारण शोरबा ही बतलाया जिससे उसे लेना भी बन्द कर दिया। इसके बाद मुझे जो भी कोई बता देता वही करने लगता, पर रोग से छूटने का कोई उपाय दिखलाई नहीं दिया। जिन डाक्टरों और वैद्यों ने मेरे शरीर की परीक्षा की उन सबने यही बतलाया कि मेरे शरीर में कोई दोष नहीं है, केवल यकृत काम नहीं कर रहा है और मैं जो भोजन कर रहा हूँ वह पच नहीं पाता। इस स्थिति में मैं अक्टूबर तक पड़ा रहा। तब मेरे ऊपर मलेरिया ज्वर का आक्रमण हुआ तापमान १०५ डिग्री तक चढ़ गया। ४-५ दिन में तापमान उतर कर औसत पर पहुंचा, पर मैंने देखा कि मेरा वजन १४ पौण्ड और भी कम हो गया है। मैं एक कंकाल मात्र रह गया हूँ। मेरे शरीर में केवल

www.44Books.com 

वजन की भारी कमी ही नहीं हुई थी, बल्कि भारी उदासी भी आ गई थी।

शरीर और मस्तिष्क की असीम पीड़ा से मैंने उत्तर प्रदेश के फतेहपुर नगर के लिये प्रस्थान किया। जलवायु और स्थान के परिवर्तन ने मुझे कुछ अंश में लाभ पहुंचाया, किन्तु बहुत अधिक नहीं। वहाँ पर रायबहादुर पं० हरिहर नाथ मुत्थू मेरे साथ एक सप्ताह रहने के लिये आये और उनकी सलाह से मैं बनारस पहुंचा। वहाँ श्री बी० आर० त्र्यम्बक शास्त्री की चिकित्सा आरम्भ हुई। तीन दिन तक मेरा निरीक्षण करने के उपरान्त शास्त्री जी ने मुझे एक कमरे में बन्द कर दिया जिसके दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द थे और केवल उतना ही प्रकाश आ सकता था जितना दो बन्द खिड़कियों के शीशे से आ सकता था। खुली हवा या सूर्य की प्रत्यक्ष किरणें नहीं आने दी जाती थीं। भोजन के रूप में दूध को छोड़ कर कोई अन्य पदार्थ नहीं ले सकता था, दूध भी थोड़ा उबाला और बिना चीनी डाला रहता। इसके अतिरिक्त शास्त्रीजी, सुबह, शाम और रात्रि को कुछ औषधि देते जो एक या दो रत्ती से अधिक नहीं होती थी। चिकित्सा ८ दिसम्बर १९३७ को शुरू हुई और १६ जनवरी १९३८ को समाप्त हुई, जिसमें कुल ४० दिन लगे। १७ जनवरी को मुझे दाल के छाने हुये पानी के साथ थोड़ा भात दिया गया। प्रकाश और स्वच्छ हवा की रुकावट कुछ ढीली की गई और उसी दिन मुझे गर्म पानी से स्नान करने दिया गया। सन्ध्या के समय शास्त्रीजी से उनके घर पर मिलने जा सका। पर मुझे कठोर आदेश दिया गया कि ठंडक से बचता रहूँ। भोजन की मात्रा और सामग्री में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ।

चिकित्सा के पहले दिन केवल ढाई सेर दूध ले सका। इसकी मात्रा बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि ग्यारहवें दिन अर्थात् १८ दिसम्बर १९३७ को मैं १० सेर दूध पी सका चिकित्सा काल में पीये जा सकने वाले दूध की यह अधिक से अधिक मात्रा थी। मैं जहाँ पहले

www.44Books.com


आधा सेर दूध भी कठिनाई से पचा सकता था, वहाँ १० सेर दूध पचा लेना मेरे लिये विलक्षण अनुभव था। शास्त्री जी आग्रह करते रहे कि मैं दूध अधिक मात्रा में लूँ पर मेरा शरीर इस आग्रह का विरोध करता। मैं प्रायः प्रति आधे घण्टे पर दूध लेता। मैं यह नहीं कह सकता कि यह साधारण भूख थी जो इतना दूध लेने के लिये प्रेरित करती थी। रात को ली हुई औषधि के कारण एक सूखेपन की भावना मुँह और गले में उत्पन्न होती जिससे मैं अधिकाधिक दूध लेने को विवश होता।

मेरे शरीर में यकृत-विकार था, इसलिये शास्त्रीजी ने यह आग्रह करना छोड़ दिया कि मैं जितना दूध पी सकता था, उससे भी अधिक लूँ। अधिक से अधिक दस सेर पी सका। मैं एक उदाहरण जानता हूँ जिसमें उन्होंने १४ सेर दूध पिलाया था। वे कहते थे कि एक रोगी को वे पहले २८ सेर तक दूध पिला चुके हैं। एक दूसरा रोगी था, जिसकी चिकित्सा मेरे चिकित्सा काल में ही हो रही थी, उसे १८-२० सेर दूध दिये जाने की बात सुनी गयी थी। शास्त्री जी बढ़ चढ़ कर बातें करने वाले व्यक्ति नहीं थे। वे प्रायः कहा करते थे कि उनकी औषधि झाड़ू है और दूध उसका साधन या पानी है, जिससे सम्पूर्ण काया के संचित मलों की स्वच्छता की जाती है।

चिकित्सा काल में मैं गहरी नींद सोता। पिछली चिकित्सा के समय मैं कठिनता से ४ सेर मठा पचा पाता। मेरा शरीर इससे अधिक मठा लेना अस्वीकार कर देता। शास्त्री जी की चिकित्सा में मुझे १० सेर दूध पी जाने में भी कोई कठिनता नहीं होती थी। पिछली चिकित्सा में मुझे प्रकाश और स्वच्छ हवा मिलती, फलों का रस भी मिलता। किन्तु इस चिकित्सा में इन तीनों का बहिष्कार था। तो भी इस चिकित्सा में मैं अपने वजन में औसत रूप से प्रतिदिन प्रायः चौथाई सेर ( एक पाव ) से भी अधिक वृद्धि करता रहा, जब कि पहली चिकित्सा में कुछ भी भार वृद्धि न हो सकी। वास्तव में यह एक खोज का

www.44Books.com 

विषय है कि प्रकाश और स्वच्छ वायु के अभाव में आयुर्वेदिक पद्धति किस प्रकार ऐसा परिणाम उपस्थित करती है।'

बकरी के दूध के प्रयोग—अमरीका के डाक्टर ड्यूरेन्ड ने अपना निम्न अनुभव 'नेचर्स पाथ' नामक पत्रिका में इस प्रकार प्रकाशित कराया था।

"मैं लगातार पेट-विकार से पीड़ित रहता आया हूँ। हर प्रकार की औषधियों का सेवन किया। कई प्रकार के खाद्य—पदार्थों के प्रयोग किये पर सफलता नहीं मिली। लाचार होकर तीन महीने से मैं केवल बकरी का दूध पी रहा हूँ। आज मेरी स्थिति यह है कि मुझे यह भी पता नहीं चलता कि मैं कभी पेट विकार का रोगी रहा हूँ। बकरी के दूध ने मेरी अन्तड़ियों में एकत्रित विजातीय कचरे को धो बहाया है। अन्तड़ियों की सफाई के साथ मेरा रक्त भी शुद्ध हो गया है जिसका परिणाम यह हुआ है कि मुझमें चिड़चिड़ापन नहीं रहा, बेचैनी, अनिद्रा, उबकाई, भूख का अभाव आदि शिकायतें लुप्त हो गई हैं।"

अमरीका के एक अन्य डाक्टर एच० ए० हीन ने लिखा है कि 'प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह बालक हो या बूढ़ा बकरी का दूध पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। कमजोर से कमजोर उदर में भी वह आसानी से पच जाता है। उसमें क्षार रहता है। समस्त खाद्य-पदार्थ या तो क्षारधर्मी या अम्लधर्मी होते हैं। हमारे शरीर में ८० प्रतिशत खाद्य-पदार्थ क्षारधर्मी होने चाहिये, तभी रक्त शुद्ध रह सकता है। यह दूध रोचक होता है और शरीर की अम्लता को शीघ्र ही दूर कर देता है। इसके सेवन से वायु नहीं बनती और अपच नहीं होता। इसमें सभी प्रकार के खनिज पदार्थ, जीवन तत्व प्रोटीन और चर्बी विद्यमान हैं। इसमें जो चर्बी पाई जाती है उससे अन्तड़ियों को स्वाभाविक रूप से चिकनाई मिल जाती है जिससे वे सब कार्य भली प्रकार कर सकती हैं।

श्री विनय मोहन जी शर्मा ने बकरी के दूध के विषय में लिखा है कि—'बकरी के दूध की महिमा मैंने अपनी आंखों से देखी है। मेरे

www.44Books.com 

एक सम्बन्धी को एक बार जंगल-विभाग में ऐसे स्थान पर रहना पड़ा जहाँ बकरियाँ अधिक पाई जाती थीं। उन्होंने कई बकरियाँ स्वयं पालीं और उन्हीं के दूध, घी और मठे का सेवन किया। कुछ महीनों में हमने आश्चर्य से देखा कि उनके असामयिक सफेद बाल बिल्कुल काले हो गये हैं। वर्षों की कोष्ठ बद्धता समाप्त हो गई है और स्वास्थ्य कई गुना सुधर गया है। जिसके पेट में फोड़े हो गये हों, जो त्वचा सम्बन्धी रोगों में ग्रसित हो और जो औषधियों के सेवन से ऊब उठा हो उसे इस सस्ते प्राणी (बकरी) के दूध का भरपूर सेवन करना चाहिये।'

इस प्रकार दुग्धाहार के लाभों का अनुभव छोटे-बड़े हजारों व्यक्ति कर चुके हैं और उनको इसके प्रभाव से स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थायी लाभ प्राप्त हुए हैं। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि मनुष्य इस अमृत तुल्य पदार्थ को छोड़कर जहरीली अथवा विजातीय औषधियों को अपने शरीर में डालकर स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता रहे।

## मठा कल्प

प्राकृतिक चिकित्सकों के मतानुसार दूध-कल्प और मठा कल्प में अधिक भेद नहीं हैं और वे प्रायः मठा का प्रयोग उस अवस्था में करते हैं जब कि रोगी को दूध नहीं पच सकता अथवा उसे पसन्द नहीं आता। इसी कारण दूध कल्प वाले लेख में स्थान-स्थान पर मठा का जिक्र भी आया है। पर वैद्य लोग मठा कल्प को स्वतन्त्र स्थान देते हैं और उसका प्रयोग विशेष रूप से संग्रहणी तथा अन्य उदर रोगों में विशेष रूप से करते हैं। यहां हम कुछ विद्वान वैद्यों के अनुभवों से मठा या तक्र-कल्प के लाभों और विधि के सम्बन्ध में कुछ लाभ की बातें बतलाने का प्रयत्न करेंगे।

हमारे देश में मठा या तक्र बहुधा खट्टे दही से तैयार किया जाता है, इससे उसका स्वाद खट्टा रहता है। मठा दूध का ही एक परिवर्तित रूप है, इससे हम इसे खट्टा दूध भी कह सकते हैं। दही जमते समय

www.44Books.com


दूध के कणों का परिवर्तन थक्कों के रूप में हो जाता है। जो जामन दूध में डाला जाता है वह इन थक्कों में कणों को मिलाकर संगठित कर देता है। फिर जब हम इसे मथते हैं तब वे घोल के रूप में बिखर कर एक हो जाते हैं और मठा तैयार हो जाता है। यह दूध की अपेक्षा कुछ गाढ़ा होता है। परन्तु इसमें पानी मिलाकर इसे पतला किया जा सकता है जिसमें इसका खट्टापन भी कम लगने लगता है। इसमें चिकनाई (फैट) बहुत कम रहती है। प्रोटीन की मात्रा पनीर की अपेक्षा इसमें बढ़ जाती है। इसलिये यह बहुत जल्दी पच जाता है। आमाशय को इसे पचाने के लिए कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। इसमें एक प्रकार के कीटाणु रहते हैं जो शरीर के अन्य प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। इसके सेवन से शरीर की रोग-नाशक शक्ति बढ़ जाती है। आमाशय के भीतर जो कृमि आदि रहते हैं वे सब मर जाते हैं। इसलिये मठा हमारे लिए बहुत उपयोगी पदार्थ है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के ज्ञाताओं ने सिद्ध कर दिया है कि आंतों के भीतर क्षार के जो कण जम जाते हैं इनसे आँतों की झिल्ली मोटी पड़ जाती है तथा पाचन में कमी आ जाती है और इसके फल स्वरूप मनुष्य को वृद्धावस्था नक आकर घेरने लगती है। ये सब दोष मठा के सेवन से दूर होते हैं और मनुष्य दीर्घजीवी बन जाता है। मठा के रोग नाशक कीटाणु आँतों में पहुँचकर हानिकारक क्षार के कणों को बाहर फेंकने लगते हैं जिससे पाचन-क्रिया अधिक उत्तम रीति से होने लगती है। रक्त में जो क्षार का अधिक अंश प्रवेश कर जाता है उसकी भी सफाई होने लगती है।

बलोरिया देश के निवासियों के लिए मशहूर है कि वे दही और मठा का अधिक सेवन करते हैं जिससे उनकी आयु अन्य देश वालों से अधिक होती है। यहां इस जमाने में भी सौ वर्ष से ऊपर की आयु के डेढ़ सौ वर्ष तक के भी अनेक व्यक्ति मिल जाते हैं। यह बात अब मानी जा चुकी है कि मठा में पाचक गुण होता है, इसके सेवन से पेट के

www.44Books.com


लगभग सभी पाचन सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भोजन के साथ या भोजन के पश्चात इसका सेवन अवश्य करना चाहिये। इसके प्रभाव से हाजमा अच्छा हो जाता है और हाजमा अच्छा होने से शुद्ध रस और रक्त बनता है। शुद्ध रक्त और रस से हमारे शरीर की पुष्टि होती है और हम दीर्घजीवी बन जाते हैं। इसी प्रकार मठा स्त्रोत-शोधक भी होता है। रक्त, माँस आदि में चूने का क्षार रहता है। धीरे-धीरे इस क्षार का जमाव नाड़ियों में हो जाता है और वहाँ इसकी वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह होता है कि वे मोटी पड़ जाती हैं और उनका लचीलापन मारा जाता है। फिर वे भली प्रकार से कार्य नहीं कर सकतीं, मन्द पड़ जाती हैं। इसका असर मनुष्य के शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता, उसकी ऊपरी त्वचा पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं, बाल पकने लग जाते हैं, शारीरिक स्फूर्ति शिथिल पड़ जाती है और मनुष्य को समय से पूर्व बुढ़ापा आ घेरता है। और यदि क्षार का जमाव जोड़ों में हो जाता है तो जोड़ फूल जाते हैं और गठिया रोग आ घेरता है।

मठा के गुण—आयुर्वेद के मतानुसार मठा स्वादिष्ट, कसैला, खट्टा, भक्षण योग्य, हलका, गरम, हितकारक है। यह गुल्म, बवासीर, परिणाम शूल, वमन, तृषा, अरुचि, सूजन, मेद, विष, कृमि, वात, मूत्ररोग, ज्वर और तेल आदि से उत्पन्न हुई पीड़ा को दूर करता है। मठा त्रिदोष नाशक होता है। खट्टेपन से वात का, मिठास से पित्त का और कसैलेपन से कफ का नाश करता है। इसका सेवन हैजा, वात ज्वर, पाण्डुरोग, वातशूल संग्रहणी और अरुचि में सदैव करना चाहिये।

मठा पांच प्रकार होता है—घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका।

जो मठा मलाई सहित दही को मथ कर बनाया जाय और जिसमें पानी आदि न डाला गया हो उसे घोल कहते हैं। जिसकी मलाई तो निकाल ली गई हो परन्तु बिना पानी डाले मथ लिया गया हो उसे

www.44Books.com 

मथित कहते हैं। जिसमें तीन भाग दही और एक भाग पानी डालकर चलाया गया हो उसे तक्र कहते हैं। जिस दही में आधा पानी डालकर मथा गया हो उसे उदश्वित और जिसमें अधिक भाग पानी का हो उसे छच्छिका ( छाछ ) कहते हैं।

चीनी ( शक्कर ) डाल कर सेवन किया गया घोल आम के समान वात-पित्त नाशक गुण वाला होता है। मथित, वात तथा पित्त नाशक और हृदय को प्रिय होता है। तक्र, ग्राही, कसेला, खट्टा, पाक तथा रस में पीठा, हल्का उष्ण वीर्य, अग्नि प्रदीपक, वीर्य-वर्धक तृप्ति करने वाला, वात नाशक और ग्रहणी आदि रोग वालों को पथ्य है। तक्र, हलका होने से ग्राही ( मल को रोकने वाला ) और पाक में स्वादु होने से पित्तप्रकोपी नहीं होता। तक्र का पान करने वाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता और तक्र से भस्म किया रोग फिर कभी उत्पन्न नहीं होता। उदश्वित कफकारक बलवर्धक और क्षयनाशक होता है छच्छिका शीतल, हलकी, पित्तनाशक, श्रमहारक और अग्नि को दीपन करने वाली होती है। आयुर्वेद में इन पाँचों में से तक्र को सबसे उत्तम माना है।

महर्षि अत्रेय के अनुसार तक्र भी तीन प्रकार का होता है। घृत-हीन, अल्प घृतयुक्त और घृत-संयुक्त। जिस तक्र में से मक्खन बिल्कुल निकाल लिया गया हो वह हलका पथ्य और त्रिदोष नाशक होता है। जिसमें से थोड़ा मक्खन निकाल लिया गया हो ऐसा तक्र वीर्य वर्धक होता है। और जिस तक्र को केवल मथ डाला हो, मक्खन बिल्कुल न निकाला गया हो वह गाढा, भारी कफ कारक, क्षीण मनुष्य को बल देने वाला तथा आम, सूजन और अतिसार को दूर करने वाला होता है। मीठा तक्र कफ कारक, वात नाशक और पित्त को शान्त करने वाला होता है। खट्टा तक्र सदैव पित्त कारक होता है। वात रोग में सोंठ और सेंधा नमक डालकर खट्टा तक्र पीना चाहिये। पित्त रोग में शक्कर मिला कर मीठा तक्र पीना लाभदायक होता है। और कफ-रोग में त्रिकुट (सोंठ, मिर्च और पीपल सम भाग ) के चूर्ण के साथ

www.44Books.com


इसे पीना चाहिये। घोल में हींग जीरा और सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिये। यह वात रोग नाशक होता है और बवासीर, अतिसार आदि को मिटाता है। यह रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलकारक और वस्ति-शूल आदि को मिटाता है घोल मूत्र कृच्छ रोग में गुड के साथ पीना चाहिये और पाण्डु रोग में चीनी के साथ। शीत ऋतु में मन्दाग्नि, वात रोग, अरुचि और छिद्रों के रोग में तक्र अमृत के समान गुणकारी है।

भली प्रकार समझ बूझ कर मठा का उपयोग करना चाहिये। इसके सेवन से जठराग्नि प्रबल होती है मनुष्य की जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति का विकास होता है। शरीर का नष्ट हुआ रक्त और माँस फिर भर जाता है। निरोगी मनुष्य को मठा सदा भोजन से आधा घन्टा बाद पीना चाहिए। मीठा मठा भोजन के दाहक तत्वों को मार देता है। ऐसा होने से भोजन भली प्रकार पच जाता है और आरोग्यता में वृद्धि होती है। आवश्यकता होने पर इसे भोजन के पहले और भोजन के साथ भी ले सकते हैं। गाँव वाले मठा का उपयोग तरकारी की जगह करते हैं, मठा में रोटी भिगोकर खाते हैं उसमें नमक मिर्च आदि भी डाल देते हैं। मठा में हींग जीरा का बघार लगाकर नमक, मिर्च और कुछ शक्कर डालकर शहरों में खाते हैं। इस प्रकार बना हुआ मठा बहुत स्वादिष्ट लगता है और उदर रोग नाशक भी होता है।

जाड़े की ऋतु में मन्दाग्नि, वात रोग अरुचि रक्तवाही स्रोतों का अवरोध इत्यादि रोगों में तक्र अमृत के समान गुण करता है। इसके अतिरिक्त विष विकार वमन जी-मिचलाहट विषम ज्वर, पाण्डु रोग, मेद वृद्धि, संग्रहणी, बवासीर, प्रमेह, वायुगोला अतिसार, शूल प्लीहोदर, उदर रोग, श्वेत कुष्ठ, तृषा और कृमि-रोग में भी यह बहुत लाभ दायक है

हेमन्त ऋतु, शिशिर और वर्षा ऋतु में दही और मठे का सेवन

www.44Books.com


उत्तम है, किन्तु शरद, वसन्त और ग्रीष्म में यह हानिकारक होता है। वसन्त ऋतु में मनुष्य का कफ बढ़ जाता है और मठा भी कफ को बढ़ाता है। इसी प्रकार ग्रीष्म और शरद ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है और मठा भी पित्त को बढ़ाता है। इसलिए ग्रीष्म और शरद में भी इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

मठा के सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों ने बड़ी बारीकी से विवेचन किया और वे उदर-सम्बन्धी रोगों में सफलता पूर्वक इसका प्रयोग करते रहे थे। अब आधुनिक चिकित्सक भी इसके प्रभाव से मोहित होकर इसका प्रयोग विभिन्न रोगियों पर करने लगे हैं। हंगरी के एक डाक्टर ने बहुत वर्षों पहले सिद्ध किया था कि मठा में आँतों के अन्दर उत्पन्न हो जाने वाले कुछ विशेष क्रमियों को मार डालने की शक्ति है, जिससे संग्रहणी जैसे रोगों में मठा के प्रयोग से बहुत लाभ पहुंचता है। आयु-वृद्धि के उपायों के खोज करने वाले प्रसिद्ध प्रोफेसर मेचनीकाफ ( रूस ) का कहना है कि तक्र में एक प्रकार के जन्तु रहते हैं जिन्हें लेक्टिव कहते हैं। ये मनुष्य के शरीर के लिये बड़ी उपयोगी चीज हैं। इससे शरीर की रोग नाशक शक्ति बढ़ती है और शरीर स्थिति रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश हो जाता है तथा स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

तक्र में लेक्टिक' एसिड, 'म्यूरियाटिक एसिड' और 'साइट्रिक एसिड' होते हैं। इसमें लेक्टिक एसिड' के योग से आँतों की रसांकुरिकाओं ( गिल्टिओं ) को उत्तेजना मिलती है और सूक्ष्म कीटाणु नष्ट होते हैं। म्यूरियाटिक एसिड' से पित्त स्राव नियमित रूप से होता है, यकृत और बड़ी आँत सबल बनते हैं और ये इन्द्रियाँ अपनी क्रिया भली भाँति करने लगती हैं। साइट्रिक एसिड' रक्त शुद्ध और रक्ताभिसरण ( खून का शरीर में घूमना ) की क्रिया में उत्तेजना देता है। और कीटाणु नाशक तथा आमाशय और ग्रहणी को शक्ति देने वाला है।

मठे के सेवन से आमाशय और पचाने वाली आंतें सबल होकर

www.44Books.com


भोजन का परिपाक शीघ्र करते हैं, छोटी आँतों में रहने वाली रस-कुरिकाओं ( गिल्टियों ) की शोषण क्रिया अच्छी तरह होती है। यकृत मूत्राशय की क्रिया उत्तेजित हो जाती है, रक्ताभिसरण क्रिया बलवती होकर रक्त शुद्ध और लाल बनता है, तथा आंतों में उपस्थित कीटाणु विजातीय विष तथा मल से उत्पन्न हुई दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष किसी को यदि ग्रहणी या ( पेचिस ) या अर्श आंतों के विकार से अतिसार ( दस्त )संग्रहणी ( बवासीर ) आदि रोगों की उत्पत्ति हो गई हो तो उसके लिये मठा अमृत सदृश्य कार्य करता है। पाचक पित्त की कमजोरी के कारण पित्त की उत्पत्ति ठीक परिमाण में न होने से अजीर्ण या संग्रहणी रोग हो गये हों तो उनके लिये भी मठा हितकर है ।

यद्यपि यह निश्चय है कि मठा संग्रहणी, अतिसार इत्यादि रोगों में एक उत्तम पथ्य है और यकृत की पित्त-संचालन क्रिया को ठीक करने में बहुधा सहायता पहुँचाता है, फिर भी इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। कई लोग आंतों की हर प्रकार की बीमारी में इसका प्रयोग कर लेते हैं। जिससे कभी-कभी भयंकर हानि भी हो जाती है। ऐसे लोगों को समझ लेना चाहिये कि मठा में संकोचन गुण भी है। यह आंतों का संकोचन करके संग्रहणी अतिसार आदि में लाभ पहुंचाता है, किन्तु कोष्ठबद्धता, प्लीहा की वृद्धि, जलोदर आदि रोगों में जिनमें विरेचन की आवश्यकता होती है, मठा के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में दूध देने से लाभ होता है। संग्रहणी और उदर रोगों में मठा का उपयोग तभी करना चाहिए जब यह मालूम हो जाय कि यह रोग वात या कफ के प्रकोप से पैदा हुआ है या आंतो की निर्बलता या जठराग्नि की मन्दता से उत्पन्न हुआ है।

रोगी को मठा दिया जाय वह खट्टा नहीं होना चाहिए। ताजा दही का बनाया मठा ही रोगी के लिए उपयोगी हो सकता है बासी मठा से जोड़ों में दर्द और सूजन होने का डर रहता है। कल्प चिकित्सा

www.44Books.com


के अवसर पर सुबह का बनाया मठा दो बजे तक देना चाहिये। फिर और मठा बना कर जाड़े में शाम के ५ बजे तक और ग्रीष्म में रात के आठ तक दे सकते हैं। मठा में पानी का अंश अधिक न हो, दही से चौथाई भाग पानी देना अच्छा होता है। पानी अधिक हो जाने से आँतों में नुकसान होता है।

गाय के दही से बना मठा बहुत उत्तम और लाभकारी होता है। किन्तु प्रवाहिका जन्य संग्रहणी, क्षय के कीटाणु जन्य संग्रहणी अथवा रोगी बालक हो तो बकरी के दही का मठा देना विशेष हितकर होता है। पित्त या कफ प्रकोप हो तो भी बकरी का मठा देना लाभदायक है।

कल्प-चिकित्सा के प्रथम सप्ताह में मक्खन निकाला हुआ मठा देना चाहिए। दूसरे सप्ताह में शरीर में कुछ बल आने पर आधा मक्खन रहने दें। फिर तीसरे सप्ताह कुल मक्खन रहने दें। अथवा वातज ग्रहणी वालों के लिए चौथाई मक्खन, पित्तज ग्रहणी वालों के लिए आधा मक्खन, कफाधिक्य में पौन भाग मक्खन, दुर्गन्ध और आम सहित मल वालों के लिए कुल मक्खन निकाल लेना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे जैसे मल बँधता जाय मक्खन की मात्रा वैसे वैसे बढ़ाता जाय, क्योंकि पतले दस्त वाले को मक्खन नहीं पचता है।

तक्र बनाते समय कुपित पित्त वालों के लिये शीतल जल और वात तथा कफ की प्रधानता होने पर गरम जल मिलावें। परन्तु मठा गरम कभी नहीं देना चाहिये। रोगी मठा को घूँट-घूँट करके मुँह चला कर पीवे। मठा में मिलाई जाने वाली चीजें उतनी ही मात्रा में होनी चाहिए जिससे बदजायका न हो जावे।

मठा के सेवन काल में कभी-कभी गाढ़े या पतले दस्त आने लगते हैं, ऐसी स्थिति में दवा पर शङ्का नहीं करनी चाहिए। यह ग्रहणी रोग का स्वभाव ही है। ऐसी हालत में मठा की मात्रा कुछ कम करदें, जैसे-जैसे दस्त की मात्रा कम होती जाय, वैसे-वैसे मठा की मात्रा बढ़ाते जांय।

www.44Books.com


**तक्र कल्प**—जिस रोगी को मठा कल्प कराना हो, उसे अन्न जल बिलकुल न दें। भूख और प्यास दोनों की निवृत्ति के लिए मठा ही देना चाहिए। जहां तक सम्भव हो मठा ताजा लेना ही अच्छा है। कल्प के प्रथम दिन रोगी को चार बार आध-आध सेर मठा देवे। प्यास लगने पर दो या तीन बार जल भी दें। जब तक आँतों में पूर्व-भुक्त अन्न का असर रहे तब तक ( ३ दिन तक ) जल पिलाना चाहिये। फिर जल कम करके बन्द कर दें और मठे पर ही रखें। मठा अग्नि बलानुसार क्रमशः बढ़ाते जायें। इस तरह केवल मठा पर ही रहने से ४०-५० दिन में ग्रहणी निर्मूल हो जाती है। आँतें बलवान हो मल बँध कर तथा दुर्गन्ध रहित और नियमित समय पर आने लगता है। निद्रा मर्यादित हो जाती है, शरीर सबल तथा तेजस्वी बन जाता है और मनमें स्फूर्ति तथा आनन्द आ जाता है। पूर्ण स्वस्थ्य होने पर भोजनादि का प्रबन्ध करें। किसी सप्ताह कम और किसी को एक सप्ताह ज्यादा मठा पर रहना पड़ता है। इसकी न्यूनाधिकता रोगी के बल, अग्नि, देश और काल के अनुसार होती है।

कल्प के आरम्भ में बहुत से रोगी कमजोरी बढ़ जाने के भय से अन्न छोड़ना नहीं चाहते ऐसी अवस्था में वैद्य को चाहिए कि रोगी को पूर्ण विश्वास दिलावे कि कमजोरी न होकर शारीरिक शक्ति में वृद्धि होगी।

**कल्प में औषधि**—कल्प-काल में दिन में चार बार 'पंचामृत पर्पटी' देते रहें, या प्रकृति भेद से 'स्वर्ण पर्पटी' दें, अथवा 'हेम गर्भ पोटली रस' या 'ग्रहणी-कपाट' आदि भी दे सकते हैं। पर इस रोग के लिये अन्य औषधि की अपेक्षा पर्पटी का स्थान ऊँचा माना गया है। शक्ति वृद्धि के लिये लौह-भस्म, नाग भस्म, अभ्रक, और यशद भस्म इन सबको मिलाकर एक रत्ती की मात्रा में प्रातः सायं शहद के साथ दे।

मन्दाग्नि हो तो लवण भास्कर चूर्ण मठा में मिला कर दे सकते हैं आम को मिटाने के लिये 'लाई चूर्ण' वृहत या लघु कोई भी सेवनीय

www.44Books.com


औषधियों के साथ मिला कर दे सकते हैं। दस्तों की संख्या कम करने के लिये दाड़िमाष्टक या कपित्थाष्टक चूर्ण दें। इन चूर्णों में दीपन, पाचन और कुचके ग्राहीशक्ति भी है। 'यदि बदहजमी हो तो 'हिग्वाष्टक चूर्ण' १—१ माशा मठा के साथ दें। यदि मूत्र में पीलापन, पेशाब थोड़ा-थोड़ा बार-बार हो तो सौंफ, छोटी इलायची, धानयाँ इनका जौकुट चूर्ण कर मठा पिलाने के बाद दिन में तीन चार बार दें। अथवा जायफल, कत्था, छोटी इलायची, सौंफ, काली अनन्तमूल, धनियाँ—इन सबका चूर्ण बना कर १—१ तोला दिन भरमें ३ बार दें। इससे पेशाब साफ हो जाता है। पेशाब लाने वाली दवा रात को न दें।

**कल्प के अन्त में पथ्य**—जब कल्प समाप्त हो जाय तो तक्र की मात्रा धीरे-धीरे घटाते जायें और अन्न की मात्रा बढ़ाते जायें। पहले दिन ६ माशा धान की खील का मांड बना कर एक बार दें। दूसरे दिन ऐसा ही माड़ दो बार दें। तीसरे दिन १—१ तोला दे सकते हैं। चौथे दिन से मसूर या मूँग की दाल का पानी, पुराने चावल की खिचड़ी आदि क्रमशः बढ़ा कर देते जायें। जौ और गेहूँ १५ दिन बाद दें। पथ्य के समय शीघ्रता न करे अन्यथा पाचन-शक्ति में पुनः गड़बड़ी होने का भय रहता है।

मठा कल्प के पश्चात् कम से कम ८ महीने तक दूध, भारी पदार्थ, मिष्ठान्न और मांसादि का सेवन न करे। यदि रात्रि को सो जाने के बाद बार-बार पेशाब करने के लिए उठना पड़े या शोथ अथवा ज्वर हो जाय तो मठा-कल्प बन्द करके दुग्ध कल्प करना चाहिए।

**तक्र की क्रिया**—पहले तो तक्र आंतों के दूषित मल को अथवा सञ्चित आम को बाहर निकालता है। २—४ दिन बाद ही दस्त कम होने लगते हैं और क्रमशः दस्त बंधने लगता है। पेशाब पृथक आने लगता है, वायु ठीक ढङ्ग से निकलने लगती है। इस प्रकार का कल्प कम से कम ४० दिन तक तो करना ही चाहिए। कभी-कभी इससे दुगुने या तिगुने समय तक करना पड़ता है। इसमें बल की वृद्धि क्रमशः स्वयं

www.44Books.com 

होने लगती है। जैसे-जैसे बल की वृद्धि हो उसके अनुसार रोगी को टहलने का आदेश देना चाहिए। कल्प के बीच में जल व अन्न बिलकुल नहीं देनाचाहिए। कुछ वैद्य सन्तरा, खरबूज आदि लेने की सलाह देते हैं, पर इसमें मतभेद हैं

अर्श रोग—अर्श रोग में तक्र-कल्प अनुपम लाभ करता है। इसमें पर्पटी का प्रयोग क्रमशः बढ़ा कर करना चाहिए। साथ में 'शूरण मोदक' 'अर्शोघ्नी वटी' 'अभयारिष्ट' द्राक्षारिष्ट' आदि औषधियाँ भी प्रयोग की जा सकती हैं। इसके सिवाय और भी बहुत से सिद्ध प्रयोग वैद्यक ग्रन्थों में दिए गये हैं। इन्हीं की सहायता से तक्र कल्प द्वारा ऐसे रोगी अच्छे हुए हैं, जिनको डाक्टरों ने असाध्य कह कर छोड़ दिया था।

पाण्डु रोग—इसी प्रकार पाण्डु रोग पर पर्पटी के साथ तक्र-कल्प कराने से और सहायक औषधि 'पुनर्नवादिमाण्डूर' माण्डूराद्यरिष्ट' आदि के प्रयोग से पाण्डु रोगसमूल नष्ट हो जाता है। प्रायः इस रोग में देखा जाता है कि चिकित्सा होने पर लाभ हो जाता है और एक-दो-तीन साल बाद फिर उसका आक्रमण हो जाता है। पर तक्र कल्प से जो रोगी अच्छे हुए हैं उनको यह रोग नहीं हो सका है।

सावधानी की आवश्यकता—कल्प-चिकित्सा में वैद्य रोगी और परिचारक तीनों पर विशेष जिम्मेदारी रहती है। जिस वैद्य के हाथ में कल्प का रोगी हो उसे चाहिये कि वह रोगी को छोड़कर २—४ दिन से अधिक के लिये बाहर न जाय, क्योंकि कल्प के मध्य में प्रायः उपद्रव पदा हो जाते हैं। अगर कोई बात पैदा हो जाय तो वैद्य की अनु-परिस्थिति में उसे कौन सम्भालेगा? रोगी को भी कल्प चिकित्सा में होने वाली सब बातें पहले से समझा देनी चाहिये कि इसमें कम से कम दो महीने या तीन महीने का समय लगेगा, ४० दिन तक अन्न जल कुछ न मिलेगा आदि। अगर कल्प के मध्य में रोगी कोई कुपथ्य कर लेता है तो रोग बढ़ने के अतिरिक्त मृत्यु तक हो सकती है। इस लिए परिचारिक को

www.44Books.com


सदैव सावधान रहना चाहिए, जिससे रोगी को कुपथ्य करने का अवसर न मिले और उसके लिये समय पर औषधि व तक्र की व्यवस्था ठीक रखे। कल्प कराने के लिये वही वैद्य चुनना चाहिये जिसने १०-२० कल्प पहले भी कराये हों और जो इस कार्य में दक्ष हो। कल्प में आने वाली असुविधाओं का सामना हिम्मत के साथ करना चाहिये।

तक्र-कल्प के लिये सबसे उत्तम शीत ऋतु है जिससे तक्र का स्वाद ठीक रहता है, खट्टा नहीं होता और पर्पटी इत्यादि रस भस्में अनुकूल रहती है, तृषा अधिक नहीं बढ़ती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रथम तो ग्रन्थकारों ने तक्र देना ही वर्जित लिखा है, फिर इस ऋतु में तक्र खट्टा भी हो जाता है, जिससे रोगी कम पीता है और प्यास अधिक लगती है। अनार, सन्तरा कुछ मिलता नहीं है, रोगी को बड़ी बेचैनी होती है। साथ ही निर्बलता भी बढ़ने लगती है। वर्षा ऋतु में कोई कल्प अनुकूल नहीं रहता। तक्र का स्वाद बदल जाता है दूध देने वाली गौएँ कच्ची घास खाती हैं। जिससे तक्र गुणहीन होता है और दस्तावर भी। इससे जहाँ तक सम्भव हो कल्प शीत ऋतु में ही करावे—

मठा कल्प के अनुभव—मठा कल्प से अभी तक हजारों आदमी कठिन व्याधियों से छुटकारा पाकर स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

दारागंज, इलाहाबाद निवासी श्री दयाशंकरजी दुवे एम० ए०, प्रोफेसर अर्थशास्त्र, प्रयाग विश्वविद्यालय ने मठा के प्रयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिया है—

'मुझको सन् १९४६ में पेट में कुछ विकार हुआ। आँव गिरने लगी और धीरे-धीरे मुझे संग्रहणी की शिकायत होने का भ्रम हुआ। मैंने इसके लिये वैद्यक और होमियोपैथिक चिकित्साएँ कराईं पर उनसे लाभ कुछ भी नहीं हुआ। चार-पाँच मास इस प्रकार कष्ट उठाने पर भी लाभ न होते देख मैंने दारा नगर ( इलाहबाद ) के राजवैद्य बाबूलाल का नाम सुनकर उनकी मठा–चिकित्सा से लाभ उठाना निश्चित किया। वैद्यजी एक यशस्वी चिकित्सक हैं, जो अपने ग्राम में ही रहते

www.44Books.com


है, और संग्रहणी या पेट की अन्य बीमारियों को अच्छा करने में नाम कमा चुके हैं। चिकित्सा ११ नवम्बर १६४६ को आरम्भ हुई। बिना पानी का गाय का मठा नित्य पीने को मिलने लगा। प्रति बार लवण भास्कर चूर्ण मठे के साथ लेना आवश्यक था। प्रातःकाल थोड़ी मात्रा में कुछ औषधि भी दी जाती थी। वैक्रान्ति मणि, मोती भस्म और 'गृहिणी-कपाट रस' ये औषधियाँ थीं। रात को सोते समय कपित्थकादि चूर्ण ( कैथे का चूर्ण ) मठे के साथ लेना पड़ता था। इन थोड़ी औषधियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु मठा के साथ नहीं लेता था। अन्न या पानी का सर्वथा निषेध था। शुरू में दो सेर मठा ले सका। एक बार में आधा सेर मठा लेता। मठा की मात्रा ५-६ सेर तक पहुँच सकी। ४० दिन में यह कल्प पूरा हुआ। पेट का रोग दूर हो गया।'

श्री छकोड़ी प्रसाद (पिपराइच गोरखपुर) ने लिखा है—'मुझे पाँच साल से अपच की बीमारी थी। खाया हुआ हजम न होता पेट भारी रहता, जिसकी वजह से कुछ काम न हो पाता। मैं खाता पीता रहता और खाट पर पड़ा रहता। बातों में भी तबीयत न लगती और न किसी खेल तमाशे में। धीरे-धीरे अपच से संग्रहणी हुई, पेट चलने लगा—दिन में कई बार टट्टी जाना पड़ता। दस-बारह टट्टी मामूली बात थी किसी दिन संख्या बीस-पच्चीस तक पहुँच जाती। वदन गलने लगा, सूख कर ठठरी हो गया। रोग मिटाने को मैं जगह-जगह दौड़ने लगा। रोग जितना ही बढ़ा मैंने जल्दी-जल्दी डाक्टर बदलने शुरू किये। गोरखपुर का कोई वैद्य डाक्टर न बचा जिससे मैंने दस-पन्द्रह दिन दवा न कराई हो। डाक्टरों ने दवाइयों की बड़ी-बड़ी शीशियाँ पिलाईं, सुइयाँ चुभोईं, वैद्यों ने काढ़ा, गोली, चूरन आजमाया पर सब व्यर्थ।

शहर के डाक्टर वैद्यों से निराश होकर एक मित्र के कहने से मैं सहजनवा स्टेशन के पास डुगडुइयां गाँव के वैद्य जी के पास गया, जो संग्रहणी के इलाज में मशहूर हैं। उन्होंने सब बातें सुनीं, नाड़ी देखी,

www.44Books.com


पेट टटोला और वात-ग्रहणी बतलाई । चिकित्सा शुरू हुई और पांच महीने तक चली। वैद्य जी ने जो कुछ करना था किया और बड़े प्रेम से किया। यहाँ तक कि मुझे अपने घर का ही आदमी मानने लगे। एक दिन मैंने उनसे पूछा—वैद्यजी आप अक्सर उपवास क्यों करते रहते हैं? उन्होंने कहा—'भाई, जब मुझे भूख नहीं रहती है और पेट में कोई खराबी नजर आती है, तो मेरा एक दो दिन उपवास कर लेने का नियम है। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि जिन वैद्यजी के पास घड़ों आसव, अरिष्ट और सैकड़ों दवा हैं, वे उपवास करते हैं। मैंने उनसे डरते-डरते पूछा कि क्या उपवास से मुझे भी फायदा हो सकता है? बोले, हाँ तुम्हें लम्बा उपवास करना पड़ेगा। उपवास करा तो मैं सकता हूँ, पर लम्बा उपवास तोड़ने की विधि मैं नहीं जानता, उसके लिये तुमको किसी प्राकृतिक चिकित्सक की शरण लेनी होगी। गोरखपुर चले जाओ तो ठीक होगा। मैंने गोरखपुर के प्राकृतिक चिकित्सालय का नाम सुन रखा था। हमारे गांव के बाबू हीरालाल अपने पुराने मलेरिया की चिकित्सा वहां से करा के स्वस्थ्य हो चुके थे। मैं उन्हीं को साथ ले गया और प्राकृतिक चिकित्सालय में भरती हो गया।

पर वहाँ मुझे उपवास नहीं, मठा कल्प कराया गया। दस दिन मुझे दिन में आठ बार एक-एक पाव मठा दिया गया और यह क्रम एक महीने तक चला। फिर मठे के साथ किशमिश भी आधी-आधी छटांक सुबह, शाम और दोपहर को दी जाती और भूख बढ़ने पर इसकी मात्रा तीन छटांक कर दी गई। दो महीना बीतने पर सुबह शाम मठा और किशमिश मिलती और दोपहर को दलिया और तरकारी। चिकित्सा में मेरे पेट पर मिट्टी की पट्टी रखी जाती शरीर को गीले कपड़े से रोज आध घन्टे तक रगड़ा जाता और कब्ज रहने पर एनिमा दिया जाता। जब कभी वायु बढ़ती तो पेट पर सेक दिया जाता।

चिकित्सालय में भरती होते समय मुझे दो आदमी सहारा देकर उठाते बैठाते तथा शौच कराते थे। करवट लेने में भी कठिनाई थी।

www.44Books.com 

पर चिकित्सा के प्रभाव से मेरे शरीर में बल बढ़ा और एक महीने बाद मैं थोड़ा टहलने लगा। तीन महीने बाद में वहाँ से निकला। उस वक्त मील भर सबेरे और इतना ही शाम को टहलता था। घर आकर मैं वहाँ बताये नियमों पर चलता रहा इससे तन्दुरुस्ती सुधरती गई। आज इलाज कराये मुझे दो वर्ष हो गये हैं। इस बीच में कभी बीमार नहीं पड़ा। आगे पड़ूंगा भी नहीं ऐसी उम्मेद रखता हूँ।

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय ने अपने बच्चे की बीमारी का जो अनुभव लिखा है, उससे प्रकट होता है कि कल्प चिकित्सा बच्चों के लिये भी वैसी ही उपयोगी हो सकती है जैसी कि बड़ों के लिये। वे लिखते हैं—

'५ सितम्बर सन् १९४० का दिन था। छोटे बच्चे की तबियत ज्यादा खराब हो गई। देखा तो बगल का टेंपरेचर १०५ डिग्री था। पड़ौस में ही एक नामी डाक्टर थे उनका इलाज शुरू किया। सात दिन तक इलाज करने पर भी कोई लाभ न देख कर इलाज बदल दिया। एक नामी वैद्य जी को बुलाया। उनके इलाज से केवल इतना ही लाभ हुआ कि ज्वर उतरने चढ़ने लगा। पर उनके बाहर चले जाने से एक दूसरे डाक्टर से इलाज कराने लगे। १५ दिन बाद उनका भी इलाज बदल दिया गया, क्योंकि कोई लाभ नहीं जान पड़ा। हाँ बच्चे को थोड़ा जाड़ा देकर ज्वर आने लगा था। उसके यकृत और प्लीहा बढ़ गये थे। जब ज्वर आता तो टेंपरेचर १०४-१०५ से कम न रहता था। डाक्टर ने मलेरिया बताया। उनका इलाज १५ दिन करने के बाद 'सप्त तिक्त' दिया गया, जो मलेरिया की अव्यर्थ औषधि समझी जाती है। और भी कुछ पेटेण्ट दवायें दी गईं। बीच में कुछ दिन के लिये 'अमृतारिष्ट' आदि आयुर्वेदीय औषधियां भी दी गईं। दुनियां भर के टोटके किये गये, जड़ी बांधी गई। पर ज्वर छोड़ने का नाम नहीं लेता था।

रात-रात भर बच्चे के सिर पर बरफ की पट्टी रख कर जागते रहना पड़ता। भोजन दूध और फल था। कभी-कभी ज्वर न रहने की

www.44Books.com


हालत में थोड़ा-बहुत भोजन रोटी, चावल आदि दे दिया जाता। मेरे एक मित्र ने सलाह दी कि अमुक डाक्टर को बच्चा दिखाया जाय। यह ६ या १० नवम्बर १६४० की बात है दवा शुरू हुई, कुनीन दी गई, रक्त की परीक्षा की गई। रक्त परीक्षा से मालुम हुआ कि रक्त में मलेरिया के कीटाणु नहीं हैं। डाक्टर ने दूसरी दवा बदली। कोई लाभ नहीं। २० नवम्बर को मैंने डाक्टर से पूछा—'कहिये बच्चा कब तक अच्छा, होगा, अभी तक तो आपके इलाज से कुछ लाभ नहीं जान पड़ा।' डाक्टर ने कहा—यकृत बढ़ने के कारण ज्वर आ रहा है। इन्फेन्टाइल फीवर है। मैं आप को वचन नहीं दे सकता कि बच्चा अच्छा होगा या नहीं। डाक्टर ने कहा—परसों बच्चे को लाइये। हम उसमें पिचकारी से रक्त डालेगे शायद लाभ हो जाय।' मैं इस पर तैयार था। किन्तु यह सुन रखा था कि रक्त डालने से कभी-कभी तुरन्त मृत्यु हो जाती है, इस कारण जी डरता भी था, उस दिन बच्चे को १०४ डिग्री ज्वर था।

उसी दिन सन्ध्या समय बच्चे का प्राकृतिक इलाज शुरू किया गया। सब दवा बन्द कर दी गईं। मठा और फल बच्चे को दिये जाने लगे। फलों में पहले सन्तरा, फिर टमाटर दिये गये। सूर्य किरण द्वारा पकाया नीली-पीली शीशियों का जल पिला कर एक-एक चम्मच दो-दो घन्टे पर दिया। असर जादू का सा हुआ। उसी दिन ज्वर जो उतरा तो फिर कभी न आया। यही चिकित्सा १८ जनवरी सन् १६४१ तक चलती रही। बच्चे का वजन बढ़ने लगा। इसके बाद थोड़ा दलिया दिया गया और दो दिन बाद रोटी दी जाने लगी। बच्चे का जिगर और प्लीहा भी बिल्कुल ठीक हो गये और फिर बच्चा स्वस्थ रहने लगा।

## आम्र----कल्प

आम भारतवर्ष का सर्वोत्तम फल माना जाता है जो स्वाद और गुणों की दृष्टि से अनुपम है। अनेक चिकित्सकों ने केवल आम के रसों

www.44Books.com 

और दूध पर रोगियों को रखकर बड़ी सफलता प्राप्त की है। उत्तम जाति के पके आमों में मनुष्य शरीर को पोषण करने वाले प्रायः सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में विटामिन 'ए' और विटामिन 'सी' दोनों प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनमें विटामिन 'ए' रोगी को बाहर के विषों से बचाता है और विटामिन 'सी' चर्म रोगों को नष्ट करता है। पके हुए फलों का रस अत्यन्त पौष्टिक और बलवर्धक माना जाता है, और यदि उसे दूध के साथ खाया जाय तो उसके गुणों में और भी वृद्धि हो जाती है। कई बीमारियों में जिनमें रोगी को केवल दूध के पथ्य पर रखना आवश्यक होता है उनमें कुछ रोगियों को दूध अनुकूल नहीं पड़ता और विवश होकर छोड़ देना पड़ता है। ऐसे समय में अगर आम के रस के साथ दूध का उपयोग किया जाय तो दोनों का सम्मिलित प्रभाव बड़ा लाभकारी होता है। इस रस में मृदु रेचक गुण होने से वह दस्त साफ लाता है। जिन लोगों को कब्ज रहता है उनको यह पथ्य रूा सिद्ध होता है इसके अतिरिक्त आमाशय और शोथ सम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत फायदा दिखलाता है। इसलिये इसका प्रयोग संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्ल पित्त, आतों के रोग, यकृत वृद्धि आदि रोगों में बड़ा लाभकारी होता है। क्षय रोग में भी यह रक्त, माँस, वीर्य ओज और शक्ति को बढ़ाने के लिये बड़ा उत्तम माना जाता है।

**प्रयोग विधि**—आम के रस का जिस समय प्रयोग आरम्भ किया जाय उस समय आम के रस और दूध को छोड़ कर बाकी सब भोजन छोड़ देना चाहिये। आम के रस के साथ गाय का दूध ही विशेष उत्तम होता है। दूध यदि तुरन्त का निकाला हुआ धारोष्ण मिल जाय तो बहुत ही लाभ दायक सिद्ध होता है। अगर न मिल सके तो उसे साधारण गर्म करके फिर ठंडा करके काम में लाना चाहिये। आम उत्तम जाति के देशी लेने चाहिए। खट्टे या कम अथवा ज्यादा पके आम कल्प के लिये ठीक नहीं रहते। पहले आमों को थोड़ी देर ठन्डे

www.44Books.com


जल में भिगोदें जिससे उनकी गर्मी कम हो जाय। फिर भली प्रकार धोकर मुँह के ऊपर की ढुअनी अलग करके उसका दो-चार बूँद रस निकालदे। फिर उसे धीरे धीरे चूसे। बहुत से लोग आम का रस निकालकर उपयोग में लाते हैं। पर ऐसा रस वात-जनक और पचने में भारी हो जाता है इस लिये आमों को चूस कर खाना ही उत्तम है। जिस समय आम रस का प्रयोग किया जा रहा हो उस समय यदि वायु या कफ का जोर दिखाई पड़े तो अदरक को काटकर सेंधे नमक में मिला कर खाने से ठीक हो जाता है। साधारणतः एक औसत दर्जे के मनुष्य को दिन भर में एक बार आम का रस और एक बार दूध का सेवन करना चाहिये। यदि पाचन-क्रिया आज्ञा दे तो २ बार आम का रस और दो बार दूध भी लिया जा सकता है। इस प्रयोग के समय अन्य भोजन कतई न लेना चाहिये। एक बार में एक सेर तक आम का रस पर्याप्त होता है।

इस तरह एक महीने से दो महीने तक केवल आम के रस और दूध के ऊपर रहने से पाचन क्रिया शुद्ध होकर पुराने कब्ज, मन्दाग्नि, क्षय, दमा और हृदय रोगियों को बहुत लाभ पहुंचता है। शरीर में नव-जीवन मालूम होता है, खून बढ़ता है, शक्ति आती है और चेहरा सुर्ख हो जाता है।

**शोष क्षय के लिये आम का रस**—एक पत्थर या चीनी मिट्टी के बर्तन में उत्तम पके हुये आमों का १५-२० तोला रस डालकर उसमें मधु-मक्खियों का शुद्ध शहद ४ तोला मिला कर सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार इतनी ही मात्रा में शाम को सेवन करना चाहिये। इसके सिवाय बीच के टाइम में दो तीन बार गाय बकरी का धारोष्ण दूध पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं खानी चाहिये। अगर पानी बिना बिल्कुल ही न रहा जा सके, तो बहुत थोड़ी मात्रा में थोड़ा सा अदरक का रस मिला कर पीना चाहिये। इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक यह प्रयोग जारी रखने से जीर्ण ज्वर, शरीर

www.44Books.com


का सूखना खांसी इत्यादि उपद्रव दूर होकर बल, वीर्य, रक्त और मांस की वृद्धि होती है।

**संग्रहणी, और उदर रोगों के लिये आम**—प्रातःकाल दो उत्तम जाति के पके हुये कलमी आमों को छीलकर उनको चाकू से कतर लेना चाहिये। फिर एक चीनी मिट्टी या कलई के बर्तन में उन्हें डालकर उनके ऊपर गर्म करके ठण्डा किया हुआ दूध इतना डालना चाहिये कि ये टुकड़े उसमें डूब जायें। कुछ समय के बाद उन टुकड़ों को चमचा से निकाल कर अच्छी तरह चबा कर खा लेना चाहिये और ऊपर से वही दूध पी लेना चाहिये। उसके पश्चात् दिन भर में तीन तीन घन्टे के अन्तर से पाव-पाव भर दूध पीना चाहिये इसी प्रकार दूध और आम के अतिरिक्त कोई अन्य चीज खाने पीने की नहीं लेनी चाहिये। जब दस्तों की संख्या कम होने लगे तब दोपहर में भी दो पके आमों के टुकड़े दूध के साथ देना आरम्भ कर देना चाहिये।

इस प्रकार रोग के अनुसार चार-पाँच सप्ताह तक यह प्रयोग चालू रखने से संग्रहणी का रोग काबू में आ जाता है। अन्य रोगों के लिये दो महीने तक यह प्रयोग चालू रखने से बहुत लाभ होता है। सैकड़ों अशक्त रोगी आम के सेवन से रोग मुक्त होकर पर्याप्त स्वस्थ और शक्तिशाली बन चुके हैं।

## खरबूजा-कल्प

खरबूजे को आयुर्वेद शास्त्र में मूत्रल, बलकारक, कोष्ठ को शुद्ध करने वाला, गुरु, स्निग्ध, शीतल, वृष्य (वीर्य वर्धक), पित्त, वात-नाशक, उन्मादनाशक, दाह को दूर करने वाला, श्रमहारी, कफकारक और उदर के विकारों को दूर करने वाला बताया है,

खरबूजे का कल्प दिल के लिये बड़ा अच्छा है। कल्प करने से दिल की धड़कन दूर होती है। स्त्रियों के गर्भाशय के ऊँचे हिस्से के सामने पटल आ जाने से उनका एक पैर भारी हो जाता है और सूजन

www.44Books.com


आ जाती है। ऐसी अवस्था में खरबूजे का कल्प बहुत लाभ करता है। उन्माद वाले को छान कर खरबूजे का स्वरस देना चाहिए, क्योंकि तन्तु उसे नुकसान करते हैं। कल्प करने के बाद में दूध भी चल सकता है पर खरबूजा और दूध एक साथ पीने का निषेध है, इससे हैजा हो जाता है। खरबूजे के दोष नष्ट करने के लिए शर्बत पीने का विधान है, पर कल्प में पानी का निषेध होने से खरबूजा कल्प में शर्बत नहीं पीना चाहिये। नपुन्सकता का इलाज करने के लिये खरबूजा कल्प समाप्त हो जाने पर दूध का भी कल्प करना चाहिये। खरबूजे का कल्प ग्रीष्म ऋतु में ही हो सकता है। अगर ग्रीष्म में ही वर्षा शुरू हो जाय तो कल्प बन्द कर देना चाहिये। यदि कल्प में चिलक पैदा हो जाय तो खरबूजे का बीज देना चाहिये। यदि कल्प में दस्त आने लगें तो बीज का छिलका घोटकर और खरबूजे के रस में या पानी में गोली बनाकर देने से लाभ होगा।

# हरीतकी कल्प

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में हरीतकी सर्वोत्तम औषधि मानी गई है, क्योंकि यह विविध अनुपानों के द्वारा कल्प-रूप में प्रयुक्त होने पर सब रोगों को दूर कर देती है। सब रोगों को हर लेने के कारण ही यह 'हरीतकी' नाम से प्रसिद्ध हुई है। इसका महत्त्व यहाँ तक माना गया है कि एक पौराणिक गाथा में कहा गया है कि जब इन्द्रदेव स्वर्ग में अमृत पी रहे थे तो उसकी एक बूँद भूतल पर गिर पड़ी और उसी से हरड़ वृक्ष की उत्पत्ति हुई।

हरड़ के गुणों का पता अन्य देशों के चिकित्सों को भी बहुत प्राचीन काल से है, पर वहाँ औषधि के रूप में इसका विशेष प्रयोग नहीं किया गया। वहाँ ये भारतवर्ष से ही जाती थी। डाक्टर पैलुडेनस नामक एक विद्वान ने लिखा है कि उस समय योरोप में पाँच प्रकार की हरड़ें भारत से आती थीं—सूखी, आचार या मुरब्बे की शक्ल

www.44Books.com 

में, खांड में या शहद में सुरक्षित की हुई। वहाँ के लिस्टन नामक विद्वान ने लिखा है कि काले रंग की, कुछ लाल से रंग की, भारी और पानी में डूब जाने वाली हरड़ें कफ को निकालती हैं, मनुष्य की बुद्धि को कुशाग्र करती हैं, दृष्टि को साफ करती है। इनके सेवन से भूख लगती है व पाचन क्रिया में मदद मिलती है।

भारतीय चिकित्सा ग्रन्थों में हरड़ को अनुलोमक, दीपक बलदायक रसायन कहा गया है। खांसी, दमा, मूत्र रोग, बवासीर, अन्तड़ियों के कृमि, पुराने दस्त, मल बन्ध, अफरा, वमन, हिचकी, हृदय रोग, जिगर और तिल्ली का बढ़ जाना, जलोदर, त्वचा के रोग, ज्वर तथा अनेक रोगों में इसका प्रयोग होता है। शक्ति बढ़ाने, बुढ़ापे के प्रभाव को रोकने और आयु को लम्बा करने के लिये रसायन-कल्प के रूप में हरड़ का अद्भुत प्रयोग किया जाता है। वर्षा ऋतु में नमक के साथ, पतझड़ में खांड के साथ, शीत ऋतु के पूर्वार्ध में अदरक और उत्तरार्ध में पिप्पली, बसन्त में मधु और गरमी के दो महीनों में गुड़ के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल हरड़ खाने का विधान है। शक्ति और स्वास्थ्य का सुधार करने वाले इस हरीतका प्रयोग में पकी हुई पीली हरड़ें लेनी चाहिये। उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसे निम्न परिमाणों में मिला कर लेना चाहिये। हरड़ और नमक आठ में एक, हरड़ और खांड चार में एक, हरड़ और पीपल आठ में एक, हरड़ और सोंठ आठ में एक, हरड़ और शहद चार में एक, और हरड़ तथा गुड़ चार में एक भाग।

हरड़ के गुण—महर्षि चरक लिखते हैं कि हरड़ में लवण रस को छोड़ कर शेष पाँचों रस होते हैं। हरड़ उष्ण है, कल्याणकारिणी है, दोषों का अनुलोमन करती है। लघु, दीपन, पाचन, आयु के लिये हितकर, दीर्घायु प्रदान करने वाली, पुष्टि दायक, उत्कृष्ट वयः स्थापक, सब रोगों को शांत करने वाली तथा बुद्धि और इन्द्रियों को बल देने वाली है। हरड़ के घी में भून कर बनाये गये चूर्ण को घी में मिलाकर चाटने से और उत्तम भोजन करते रहने से शरीर में बल आता है और शक्ति बढ़ती है। गुल्म, उदावत,

www.44Books.com


क्षय, पाण्डु रोग, मद, अर्श, संग्रहणी, पुराना मलेरिया, बुखार, हृदय के रोग, सिर के रोग, दस्त, अरुचि, खाँसी, पेशाब के रोग, अफरा, प्लीहा, नवीन उदर रोग, जुकाम, स्वर भेद, विवर्णता, कमला, कृमि रोग, श्वयथु (शोथ), दमा वमन, नपुंसकता, अंगों का शिथिल हो जाना, विभिन्न कारणों से रसवाही स्रोतों (ग्रन्थियों) से रस आदि न बहना, छाती और फेंफड़ों में कफ भर जाना, स्मृति और बुद्धि नाश, मृगी, उन्माद—इन्हें शीघ्र ही दूर करती है। गोविन्ददास मधु-भावित हरड़ों को इसी प्रकार अनेक रोगों में लाभदायक समझते हैं। राजवल्लभ ने इसकी प्रशंसा में यहाँ तक लिखा है कि हरड़ माता के समान मनुष्यों का उपचार करती है। माता कभी नाराज भी हो जाती है, पर खा लेने पर यह कभी उपद्रव नहीं करती। संस्कृत में कहावत है कि 'जिसकी माता नहीं होती उसकी माता हरड़ होती है।'

**एक हजार हरड़ों का कल्प**—पेट के रोगों में चरक ने एक हजार हरड़ों का कल्प कराने के लिये लिखा है। यह कल्प (प्रयोग) किस विधि से कराना चाहिये, यह विचारणीय है। चरक ने स्वयं तो हजार हरड़ों को प्रयोग करने की विधि पर विस्तृत विवेचन नहीं दिया है, परन्तु उसके व्याख्याकारों ने भी इसकी कोई क्रियात्मक व्याख्या नहीं बताई।

कई विद्वान एक हजार हरड़ों का प्रयोग रसायनोक्त वर्द्धमान पिप्पली क्रम में करने को कहते हैं। यह ढग हरड़ का वर्द्धमान क्रम प्राचीन काल की उत्तम मात्रा है। मध्यम मात्रा दिन में ६ हरीतकी और अल्प मात्रा तीन हरड़ समझनी चाहिये। परन्तु ये सब मात्रायें आधुनिक पुरुषों के लिये अत्यधिक है। इससे आजकल के अपेक्षाकृत निर्बल पुरुषों को लाभ के स्थान पर हानि होने का भय है। कुछ लोग कहते हैं कि पहले दिन हरड़ से आरम्भ करके दस दिन तक प्रति-दिन एक हरड़ बढ़ाकर दस हरड़ तक लेने लगें। फिर नब्बे दिन तक दस के हिसाब से नौ हरड़े सेवन करें। अन्त के दस दिनों में हरड़ों की संख्या उसी प्रकार कम करते हुए फिर एक पर आ जाय। इस प्रकार

www.44Books.com


एक सौ नौ दिनों में एक हजार हरड़ों का सेवन किया जा सकता है। यह क्रम भी ठीक नहीं है। आजकल दस बड़ी हरड़ अधिकांश व्यक्तियों के लिये बहुत अधिक हैं।

पर चरक ने स्वयं हरड़ की संख्या बढ़ा कर सेवन करने को नहीं लिखा है, परन्तु उनके भाष्यकारों ने ऐसा लिखा है। चरक का आशय सम्भवतः यह है कि उदर-रोगी कुल मिला कर एक हजार हरड़ें सेवन कर ले। शरीर के बल के अनुसार हर रोज एक या दो हरड़ें खानी चाहिये। इस तरह हजार या पांच सौ दिनों में एक हजार हरड़ों का प्रयोग हो जायगा। इस विधि से साधारण व्यक्ति भी अधिक लाभ उठा सकते हैं।

## लहसुन कल्प

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में एक कथा है कि भेष बदल कर देवदार के बनों में भीख माँगते हुए शिवजी ने ऋषि पत्नियों को ध्यान से देखा, उस समय तक उनके सन्तान नहीं हुई थी। रोग दूर करने में शंकर जी की ख्याति सुन कर वे उनके पास सन्तान की इच्छा से पहुंचीं। पार्वती जी ने मुनि पत्नियों की मनोवाञ्छा पूर्ण करने को कहा। शंकर जी प्रसन्न हो गये। उन्होंने उमा से कहा कि तुम इन ऋषि पत्नियों को बल, रूप और सन्तान देने वाले 'महान गन्ध' का उपचार कराओ। जिस प्रकार पत्थर की लकीर अमिट होती है, मेरा वचन भी वैसे ही समझो इनके सन्तान अवश्य होगी। भगवान का नाम लेने वाली उन देवियों ने तब 'महान गन्ध उपचार' किया और उनके मन की इच्छायें पूरी हो गईं।

महर्षि मरीच कश्यप की इस कथा में बताया हुआ 'महान गन्ध उपचार' लहसुन का कल्प है। जिसका वर्णन वाग्भट्ट, भाव मिश्र आदि आयुर्वेदाचार्यों ने बड़े विस्तार से किया है। आयुर्वेदिक साहित्य में यह श्रेष्ठ कल्प माना गया है। सर्दी, हवा, बारिश और पाले से मारे हुये शरीर वालों के लिये, टूटे हुये, टेढ़े

www.44Books.com


मेढ़े, निष्क्रिय तथा वेदनायुक्त हड्डियों वालों के लिये और वायु से पीड़ित लोगों के लिये यह कल्प सर्वोत्तम उपचार है। यह लहसुन का प्रयोग पहले वायु रोग के आक्रान्त 'उद्धव' जी के लिये नारद ने करवाया था।

लहसुन कल्प विधि—शीत और वसन्त ऋतु में, अत्यन्त बादलों से घिरी वर्षा ऋतु में, आवश्यकता होने पर ग्रीष्म ऋतु में भी, पर वायु और कफ के रोगियों को सदा ही सामर्थ्य के अनुसार लहसुन सेवन करते रहना चाहिये। यह कल्प पौष या माघ के महीने में इसलिये उत्तम होता है कि उस समय ताजा लहसुन प्राप्त हो सकता है। ग्रन्थकारों ने ताजे लहसुन की सबसे छोटी मात्रा बत्तीस तोला बतलाई है, मध्य अड़तालीस तोला और उत्तम मात्रा चौसठ तोला या अस्सी तोला। ताजा लहसुन न मिलने पर सूखे कन्द का प्रयोग करना हो तो तुरियों को गिनती में सौ, साठ या पचास लिया जाता है। शरीर, अग्नि और समय की अनुकूलता देख कर मात्रा का निश्चय करना चाहिये।

तेज अग्नि वाला, शान्त मन वाला, धैर्यवान, सुखी पुरुष, प्रचण्ड वायु से रहित कमरे में रहता हुआ पुण्य-दिन में लहसुन-कल्प आरम्भ करे। सर्दी से बचने के लिये उसके पास कम्बल, रजाई आदि पर्याप्त होने चाहिये। उन निर्मल वस्त्रों को अगर की धूनी दे देनी चाहिये। कमरे की हवा को स्वच्छ रखने के लिये धूप जलती हो, सुगन्ध द्रव्यों से बनाये अंगराग (पौडर) उसके शरीर पर मलना चाहिये। वह सदा खड़ाऊँ पहन कर रहे, नंगे पैर न चले।

लहसुन लाने का काम एक नौकर के जिम्मे हो और उन्हें खाने के लिये ठीक करने का दूसरे नौकर के। पत्तों को छोड़ दें तुरियाँ और नाल लें। कुण्डी सोंटे से रगड़कर खूब घी मिला कर खाये। चिन्ता, दिन में सोना और कठोर दातुन का परित्याग कर देने वाला पुरुष भोजन पच जाने पर सुबह सुख पूर्वक उठे, ब्राह्मणों को पूजे, कल्याण-

www.44Books.com


वारी मन्त्रों का पाठ करे और तब बैठकर लहसुन खाये। सदा गरम पानी पीवे।

अदरक, नीबू या अनारदाने के साथ लहसुन की चटनी बनाकर रोगी को दें। मूली को छोड़कर हरितक' वर्ग के सब पदार्थ उसे खाने को दिये जा सकते हैं। उसके बाद मटर के आटे के साथ मुँह और होठों को गरम पानी से धोकर जायफल, लता, कस्तूरी, लोंग, कपूर, शीतलचीनी आदि सुगन्धित मसालों से भरे पान को मुख में रखे, पहला रस थूक दे। इससे श्लेष्मा विलीन हो जाती है और चैतन्यता आती है। मुख की दुर्गन्ध दूर होकर सुगन्ध आती है।

प्यास लगने पर दीपक पदार्थों से बनाये पानी को पियें। पित्त-प्रधान ( गरम प्रकृति ) का व्यक्ति कोई सा भी पानी पी सकता है। मोथे और सौठ से या केवल सौंठ से पकाया हुआ पानी रात को पीकर सो जाय। इन्द्रियों को वश में रखता हुआ समझदार पुरुष इस विधि से पन्द्रह दिन, महीने, दो महीने या सर्दियों के चार महीने लहसुन का सेवन करे।

**कल्प के समय पथ्य**—स्वभाव से रूक्ष पदार्थ पित्त को प्रकुपित करते हैं अतः वे नहीं खाने चाहिये। अन्न थोड़ा खाना चाहिये। सुगन्धित हृदय के लिये हित कर नमकीन व्यंजनों के साथ जौ और गेहूँ की तबे पर पकाई बिना चुपड़ी रोटियाँ, शाली के चावल से बनाई गरम रोटियां, मूंग और जौ के पदार्थ, सत्तू की कम घी वाली नमकीन टिकियाँ, बथुए का शाक, छोटी मूल की भुजिया आदि खाई जा सकती हैं।

जो पुरुष वैसे ही घी पी सकता है, उसे अन्न घी डाल कर खाना अच्छा होता है। जो वैसे कम घी पी सके उसे खाद्य पदार्थों के साथ खूब घी खिलाये। कुष्ठ, दमा, श्वास, खांसी, प्रमेह, तिल्ली, बवासीर और गुल्म के रोगी तथा चिन्तनशील पुरुष लहसुन खाने के साथ पानी न पीयें। लहसुन खाने के बाद इन्हें कुछ दिन तक भारी भोजन न देकर रस ( यूष ) पिलाने चाहिये। जब इन्हें भूख लगने लगे तो शाली और

www.44Books.com


साठी के सफेद चावलों का भोजन थोड़ा-थोड़ा दे। दही, छाछ और रसों के साथ तीन दिन तक चावल दें, फिर सिरके और मूंग की दाल के साथ फुलका दें। बासी चीज न दें। विरुद्ध गुण वाले पदार्थ, देर से हजम होने वाले शाकों और दूध से बने पकवानों को, स्रोतों को बन्द कर देने वाले अन्न और गन्ने से बनने वाले पदार्थों को न दें। हवा के झोकों से बच कर सोने वाले ये रोगी मैथुन, चिन्ता, व्यायाम और अहितकर कार्य सब छोड़ दें।

**लहसुन के सम्बन्ध में नई खोजें**—भारतीय ऋषियों ने लहसुन-कल्प द्वारा रोगों को दूर करने की जो अनेक विधियाँ बतलाई हैं उनकी पुष्टि आधुनिक विज्ञान की खोजों से भी हो रही है। डबलिन के डाक्टर मिनचिन ने सोलह बरस तक लगातार लहसुन से ही अपने सब रोगियों की चिकित्सा की थी। बैंगलोर की भारतीय विज्ञान परिषद' (इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स) में एक ऐसे द्रव्य की जाँच की गई थी जो लहसुन से प्राप्त किया जा सकता है और जिसमें अनेक कीटाणु नाशक गुण बताए गये हैं। कई प्रकार से यह द्रव 'पेनसिलीन' के समान है और इसका नाम 'एलिसन' रखा गया है। पौधों के विशेष प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने में यह द्रव्य उपयोगी समझा जा रहा है। 'पेनसिलीन' को आजकल डाक्टरों ने भूलोक के अमृत के सदृश प्रसिद्ध कर दिया है। भारतीय विज्ञान परिषद् के लहसुन पर खोज करने वाले डाक्टरों का ख्याल है कि 'पेनसिलीन' की तुलना में 'एलिसन' कई दृष्टियों से अधिक हितकारी है, क्योंकि रक्त और आमाशयिक रस से मिलने पर यह बिगड़ता नहीं।

# खजूर (छुआरा) कल्प

लगभग एक पाव उत्तम छुहारे लें, उन्हें रात्रि के समय ओस में रख दें। प्रातः सबकी गुठली इस प्रकार सावधानी से निकाल डालें कि प्रत्येक छुहारा जुड़ा ही रहे। फिर असली केशर, सरसों बराबर और

www.44Books.com


उतनी ही अफीम प्रत्येक छुआरे में भर ऊपर से सूत बाँध दें। फिर एक ऐसा हरा पलाश का पेड़ तलाश करें जिसकी मुटाई एक फुट हो। उसका १।। फुट तना छोड़ कर आरी से बराबर काट दें। फिर इस १।। फुट में से भी आधा फुट का हिस्सा आरी से काट लें (यह टुकड़ा ढकने के काम आयेगा ) अब जो जमीन पर एक फुट का हिस्सा बचा है उसे ऊखल की तरह इतना खोद लें कि उसमें उक्त छुआरे भली प्रकार आ जायें। उसमें उक्त छुआरे जमा कर ऊपर से इतना गोदुग्ध डालें जिससे सब छुहारे अच्छी तरह डूब जायें। फिर वह आधा फुट का टुकड़ा ऊखल के मुँह पर रख कर मुलतानी मिट्टी से सन्धि को भर दें और ऊपर तथा बगल में कपरोटी कर दे। पश्चात् उसके चारों ओर और ऊपर आरने उपले खूब चिन दें और जब दो घड़ी रात बीत जाय तब उसमें अग्नि लगा दें। प्रातः काल जब अग्नि शाँत हो जाय तब सब छुहारे निकाल कर शुद्ध पात्र में रखें। इनमें से प्रथम आधे छुहारे से आरम्भ कर क्रम से बढ़ाते हुए आठवे दिन पूरे दो छुहारे सेवन करें। इसके ऊपर गाय का दूध पियें। दूध की मात्रा भी छुहारे के साथ साथ एक पाव से बढ़ा कर दो सेर तक ली जाये। फिर उसी क्रम से घटाते हुए चौथाई मात्रा पर आवें और फिर बढ़ावें। इसी प्रकार एक दो मास सेवन करने से नपुंसकता पूर्णणया नष्ट होकर शरीर की सर्वाङ्गीन वृद्धि और पुष्टि होती है।

## आम्र कल्प के विषय में कुछ और बातें

पिछले पृष्ठों में 'आम्र कल्प' के विषय में लिखा जा चुका है। वह विशेष रूप से वैद्यों के मतानुसार है। प्राकृतिक चिकित्सक भी आम्र-कल्प को बहुत लाभदायक मानते हैं, पर उनकी विधि में और वैद्यों की विधि में से कई बातों में अन्तर है। नीचे आम्र-कल्प के विषय में प्राकृतिक चिकित्सा वालों का मत दिया जाता है।

साधारणतः सभी लोग कल्प के माने शरीर बदलना ही समझते

www.44Books.com 

हैं। जब शरीर बदल गया तब रोग कहाँ ? पुराने रोग तो पुराने चोले के साथ ही चले जाते हैं, कल्प मिले नये चोले में रोग का स्थान कहाँ ? किसी रोग के लिए कल्प कीजिये किसी चीज का कल्प कीजिए उसके माने होते हैं आप अपने रोग को जड़ मूल से नष्ट करने का अनुष्ठान कर रहे हैं। इसलिये कल्प के अर्थ के साथ ही कुछ कष्ट सहने का, इन्द्रियों को वश में करने का एवं कुछ विशेष संयम का भी भान होता है। दूसरे कल्पों में कष्ट की बात हो सकती है, पर आम्र कल्प से कष्ट कहां ? वहां तो आनन्द ही आनन्द है। ठण्डे पानी से भरे हुए मिट्टी के नांद में हरे, पीले रसीले, सुमधुर, सुगन्धित आम भिगो दिये गये हैं, चार आदमी उसके चारों ओर बैठ जाइये और फिर एक एक आम का रस लीजिये और छक छक कर तृप्त होकर चूसिये और आपने आम खा लिए तो लीजिये धारोष्ण दूध आ रहा है। इसे भी पीजिये। बस, पूरा हुआ काम। यही कल्प है। इसमें कष्ट का प्रवेश कहां ? आम का कल्प करना कुछ दिन देवताओं का भोजन ग्रहण करना है।

आम के कल्प से दुबले मोटे बनते हैं, खुरदरी त्वचा, स्वच्छ सलवण हो जाती है, अशक्तता जाकर शरीर सुपुष्ट होता है आंखों में तेज भरता है, दांत साफ हो जाते हैं एवं कपोलों पर लालिमा छा जाती है, कब्ज चला जाता है और शरीर में उत्साह एवं उमङ्ग का संचार होता है।

पर यह सब होता क्यों है ? इसके दो कारण हैं। पहला आम और दूध में क्षारों एवं विटामिनों का आधिक्य, दूसरे आम-दूध की सुपाच्यता। अनेक रोग किसी विटामिन अथवा क्षार की कमी के कारण होते हैं और बहुत से रोग रक्त में अम्लता बढ़ जाने से। आम्र कल्प दोनों ही प्रकार का रोग हरता है। अभावों को मिटाता है एवं रक्त में क्षारों के आधिक्य और अम्लता को दूर करता है। यदि मनुष्य का भोजन सन्तुलित हो, उसमें उचित मात्रा में श्वेतसार (गेहूँ चावल) प्रोटीन, (दाल दूध) चिकनाई (घी तेल) हो तो आदमी बीमार न पड़े।

www.44Books.com 

पर जब सन्तुलित का सवाल न कर अधिकतर रोटी, दाल, चीनी, घी, तेल चरपरे एवं तले पदार्थों पर आदमी रहने लगता है तो उसकी पाचन शक्ति बिगड़ने के साथ रक्त अम्लमय हो जाता है। फलतः कब्ज, अपच के साथ अनेक रोग होते हैं। पर आम्र कल्प में आप केवल आम दूध पर रहने लगते हैं। सारे अप्राकृतिक खाद्यों से आपका पिण्ड छूट जाता है और आम में यथेष्ट फुजला होने के कारश कब्ज शीघ्र टूटता है और शरीर को नया बनाने, रक्त को बदलने के पथ पर लग जाते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि श्वेतसार आठ घन्टे में पचकर शर्करा बनता है। इसके बाद ही उसका उपयोग हमारा शरीर कर पाता है। वह शर्करा पके आम में स्वाभाविक रूप से रहती है, अतः आम के शरीर में पहुँचते ही शरीर उसका उपयोग करना आरम्भ कर देता है, एवं उसे शक्ति मिलने लगती है। वह पाचन शक्ति जो भारी गरिष्ठ चीजें पचाते पचाते थक गई थी, नाकाबिल हो गई थी, पाचन के भारी काम से छुट्टी पा जाती है और आराम मिलने से धीरे-धीरे सशक्त होकर अपनी पूर्व शक्ति प्राप्त करती है। आम्र कल्प से पाचन शक्ति सुधारने का यही सही रहस्य है। और आम के साथ दूध भी तो रहता है। बिना दूध के आम्र यज्ञ की पूर्णाहुति हो ही नहीं सकती। वैद्यों की तो राय है कि बिना दूध के आम का कल्प चल नहीं सकता, पर प्राकृतिक चिकित्सक रोगियों को पहले कुछ दिन आम ही खिलाते हैं, फिर उसके बाद दूध शुरू होता है। और दूध तो पूर्ण भोजन है। प्रकृति ने दूध में शरीर के लिए आवश्यक सभी सामान दिये हैं। असल में दूध भोजन का माप-दण्ड है। उस मनुष्य के भोजन में जिसमें वे सबके सब तत्त्व नहीं हैं जो दूध में होते हैं उसे सन्तुलित कह ही नहीं सकते। अतः सन्तुलन करने के लिए दूध की जरूरत हुआ करती है। दूध की शर्करा एवं चिकनाई जैसी दूसरी शर्करा एवं चिकनाई मिलना कठिन है। दूध का प्रोटीन भी सर्वश्रेष्ठ एवं हलका माना जाता है। आम में प्रोटीन

www.44Books.com 

होता है और चिकनाई नाम मात्र को होती है, अतः आम्र कल्प में आम के साथ दूध का मेल मिलाया गया है।

यही कारण है कि आम्र कल्प में प्रायः सभी रोग, विशेषतः पाचन की गड़बड़ी व रक्त में अम्लता से पैदा होने वाले रोग शीघ्रता से जाते हैं उनमें से कुछ ये हैं—दुर्बलता, रक्ताभाव, स्नायुदौर्बल्य, धातुदौर्बल्य नपुंसकता, पुराना कब्ज, अग्निमांद्य, आरम्भिक अवस्था में वात, अनिद्रा, रक्त चाप की कमी या अधिकता. गठिया, दमा, हृदय की कमजोरी आदि।

**आम्र कल्प कर कैसे**—यदि आप दुबल हैं, तो तीन चार दिन, और मोटे हैं तो मुटापे के हिसाब से पाँच सात दिन केवल पानी पीकर रह जाँय और सेर डेढ़ सेर गुनगुने पानी का एनिमा लेते रहें, ताकि पाचन प्रणाली को थोड़ा आराम मिल जाय एवं आँतों से पुराना सड़ा मल निकल जाय। आगे यदि कल्प काल में कब्ज रहे तो आध सेर पानी का एनिमा नित्य लेने में भी कोई हर्ज नहीं है। फिर यदि आपने तीन दिन का उपवास किया है तो पहले दिन खूब पतले रस वाले छोटे छोटे चार चार आम सवेरे, दोपहर और शाम को चूसिये, यदि तीन दिन से अधिक का उपवास किया है तो उपवास की लम्बाई के अनुसार पहले दिन में तीन पाव, एक से चार आमों तक का रस पाव भर पानी में निचोड़ कर एवं छानकर पीजिये। जो भी आम आप काम में लाइये उन्हें चार घन्टे तक पानी में जरूर भिगो दीजिए। दूसरे दिन आम चूसना शुरू कर दीजिये और धीरे धीरे भूख के अनुसार आमों की संख्या बढ़ा लीजिये तीन चार दिन केवल आम चूस कर ही रहिए, फिर प्रत्येक आहार के साथ पाव—पाव भर गाय का दूध लेना शुरू कीजिये। सवेरे शाम कच्चा दूध लेना चाहिये और दोपहर को सबेरे का गरम करके रखा हुआ दूध। इस दूध को भी आम की ही तरह चूसिए, दूध और भी सुपाच्य हो जायगा। धीरे-धीरे दूध की मात्रा आध सेर तक बढ़ाई जा सकती है और भूख अधिक लगने पर आम दूध के दो आहारों

www.44Books.com 

के बीच में भी दूध पिया जा सकता है । प्यास लगने पर पानी जरूर पीना ही चाहिए ।

केवल आम पर तीन चार दिन रह जाने से लाभ यह होगा कि आँतों में पुराने मल की सड़न से पैदा हुए शत्रु क्रिमियों का नाश हो जायगा एवं मित्र क्रिमियों की संख्या बढ़ेगी, जिससे पाचन एवं निष्कासन क्रिया दुरुस्त होगी एवं यदि वायु होती होगी तो वह शान्त होगी । दूध शुरू हो जाने पर यह कार्य उतनी तेजी से नहीं हो पाता । थोड़े दूध में क्रिमिनाशक शक्ति नहीं है । दूसरे दूध का उपयोग भली प्रकार हो सके उसके लिए भी उसे क्रिमिरहित पाचन प्रणाली चाहिये ।

**कल्प के लिए आम**—कल्प के लिए कोई भी आम हो सकता है । पर एक ही बात याद रखिये—आम मीठे और पतले रस वाले होने चाहिये । ये गुण बीजू आम में ही मिलेंगे। आम डाल के हों तो अच्छा है पाल के आमों से भी काम चलता है । आप कलमी आम का भी कल्प कर सकते हैं, पर आप यह देख लें कि आप कलमी आम के गूदे को इतना चबावें, मुँह में इतना घुलालें कि उसका गूदा आपके मुँह में पतले रस में परिणित होने के बाद ही गले के नीचे उतरे । कलमी आम का खतरा कलमी आम में नहीं, हमारी जल्दी-जल्दी खाने की प्रवृत्ति में है ।

## एक खतरा

आम के अमृतमय स्वाद की प्रशंसा करना व्यर्थ है । उसके विशिष्ट स्वाद के कारण ही लोगों का इसे भूख से अधिक खाने की ओर झुकाव रहता है । यह अनुचित है । आम खाते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि दूध पीना है । बीच बीच में दूध की घूटें भरते रहा जाय । हमेशा इतनी ही मात्रा में आम लिये जांय कि दूसरे आहार के समय भूख कसकर लगे । आम दूध के दिन में तीन आहारों की बच्चों और जवानों को ही जरूरत होती है, अधेड़ और बूढ़ों के लिए दो आहार काफ़ी हैं । हां, आम कल्प के आरम्भ में जब दूध न लिया जाय, तब

www.44Books.com


आम चूसने के बाद दूध की जगह पानी पीना चाहिये। आम के पचने में जो सहायता मिलती है, वह इसके जलाधिक्य का फल है, वह जल आम चूसने के बाद पीना चाहिये। यों तो लोग कल्प की अवधि ४० दिन मानते हैं, पर आम कल्प तो लम्बा चलना चाहिये जितने दिन चल सके दो ढाई महीने भी। इससे लाभ ही लाभ है किसी प्रकार की हानि की तो सम्भावना ही नहीं है। जब कल्प समाप्त करना हो तो पहले दिन दोपहर को दूध आम की जगह चोकर समेत एक आटे की हलकी सी रोटी, कुछ हरी तरकारियाँ और कुछ आम भी लिये जांय। दो तीन दिन में दोपहर को भूख के अनुसार रोटी सब्जी खाने लग जाना चाहिए। सुविधा हो तो दोपहर को या शाम को रोटी सब्जी और दिन में आम दूध का भोजन महीनों चल सकता है। जो दो तीन सप्ताह से अधिक समय तक आम का कल्प न कर पावें वे इस मिश्रित भोजन पर दो तीन सप्ताह जरूर बितावें। एक बार रोटी सब्जी और दूसरी बार आम दूध शुरू कर देने के बाद आप जब चाहें स्वास्थ्य मय साधारण भोजन पर आ जांय।

# अन्य फलों के कल्प

इसी प्रकार खरबूजा, जामुन, पपीता, संतरा आदि अनेक फलों का कल्प किया जा सकता है। जो भिन्न-भिन्न शारीरिक रोगों को दूर करने में समर्थ होता है, खरबूजे का कल्प दिल के रोगों को दूर करने में हितकारी है, स्त्रियों के गर्भाशय की खराबी को दूर करता है और नपुन्सकता के लिये भी लाभदायक है। किसी भी कल्प में पानी पीने का नियम नहीं है, इसलिये खरबूजे के कल्प में शर्बत पीना मना है। जामुन का कल्प सभी प्रकार उदर रोगों में बड़ा लाभकारी होता है। पपीता में रेचक ( दस्त लाने वाला ) और पाचक दोनों गुण पाये जाते हैं और इसका कल्प आमाशय की कमजोरी और कोष्ठ बद्धता के रोगी को विशेष हितकारी होता है। यह बवासीर वालों के लिये भी बहुत

www.44Books.com 

उत्तम माना गया है। सन्तरा अथवा नारंगी के रस का कल्प उन लोगों को करना चाहिये जो क्षीण और कमजोर हो गये हैं, जिनकी सांस जल्दी जल्दी चलती हो, जिनकी अग्नि मन्द हो और वमन या नशा सा रहता हो।

सभी प्रकार के फलों के कल्पों की विधि लगभग एक सी है। इन फलों के कल्प प्राय: एक सप्ताह तक ही किए जाते हैं और किसी में पानी का प्रयोग नहीं किया जाता।

**दुग्ध कल्प को एक अन्य विधि**—काया कल्प द्वारा शारीरिक स्थिति के परिवर्तन के लिये हमारे शास्त्रों में कई कल्प ( प्रयोग ) बतलाए गए हैं, जिनमें दुग्ध कल्प प्रमुख है। दुग्ध कल्प का सच्चा अर्थ होता है, गाय के दूध के अनुपान से विधि विधान पूर्वक अपनी शारीरिक-विकृतियों पर विजय पाना और सुन्दर, पुष्ट तथा दीर्घजीवी जीवन प्राप्त करना। प्राचीन काल में हमारे देश में इसके प्रयोग होते थे, तभी हमारे पूर्वज शत-शरद जीवी ( सौ साल की आयु वाले ) हो पाए। यदि आप हमारे आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करें तो आपको अजदुग्ध कल्प ( बकरी के दूध का अनुपान ) के समान कई प्रकार के अनुपानों का वर्णन मिलेगा, जिनके अभ्यास और अनुपान से कोई भी मनुष्य अपने शरीर में संचित हुई व्याधियों और संक्रामक रोगों का निवारण कर सकता है। गाय के दूध का कल्प ( दुग्ध कल्प ) इसलिए प्रसिद्ध है कि इसका अनुपान करने से लगभग वात (वायु), पित्त और कफ सम्बन्धी सभी व्याधियों को हटाया जा सकता है, जो सभी रोगों की जड़ मानी जाती है। जिस प्रकार गोमूत्र-कल्प द्वारा शरीर के विष को शान्त किया जाता है उसी प्रकार यदि नीचे बताये गये विधान के अनुसार इस प्रक्रिया का अनुपालन ३० दिन तक किया जाय तो आपका शरीर आने वाले कई सालों के लिये निरोग हो जायेगा और सभी इन्द्रियाँ शान्ति से अपना-अपना कार्य करने लग जायेंगी, न कि कभी सिर दर्द तो कभी बुखार और कभी कब्जी।

दुग्धकल्प के प्रयोग का समय वसन्त ऋतु में है, जब कि सूर्य उत्त-

www.44Books.com


रायण होता है और शुक्ल पक्ष ( जब चन्द्रमा बड़ा होता जा रहा हो ) इसके लिये उचित समय माना गया है। बसन्त ऋतु में न तो प्रकृति अधिक गरम होती है और न अधिक शीत—अतः यही समय उचित है। साथ-साथ यह ध्यान रखना चाहिये कि आप एक माह के लिये कुछ शारीरिक काम न करें और न व्यायाम ही, क्योंकि व्यायाम का अभ्यास आपके शरीर में तापक्रम की वृद्धि करेगा, जिससे इस अनुपान के असफल हो जाने का भय है। इस कल्प [ प्रयोग ] के करने के पहले आप को चाहिये कि आप कोष्ठ-शुद्धि करलें, [ पेट साफ करलें, हल्के विरेचन द्वारा ] कोष्ठशुद्धि करने के लिये त्रिफला चूर्ण ठीक रहेगा अथवा शोधी हुई हरड़ हो तो भी अच्छा ही है। यह आवश्यक हो जाता है कि आपका पेट इस कल्प को प्रारम्भ करने से पहले सभी मल को त्याग दे जिससे आपका अभ्यास बिना किसी रोकटोक के पूरा हो जावे।

दूध गाय का और एकदम ताजा होना चाहिये। इसके अनुपान का तरीका यह है। पहले दिन ९ छटांक गाय का दूध लेवें, उसे कलई-दार बर्तन में रखें। ३ छटांक कड़ुवी तुम्बी का रस निकाल कर उसमें मिला लेवें। कड़ुवी तुम्बी का रस नहीं मिलने पर या तो ६ माशा त्रिफला का चूर्ण मिला लेवें अथवा त्रिकुटु चूर्ण ( सोठ, मिर्च, पिप्पल ) ३-३ माशा लेकर मिला दें। ( त्रिफला चूर्ण या त्रिकुटु चूर्ण किसी भी विश्वसनीय वैद्य के पास से ) लिया जा सकता है।

अच्छा तो आपने दूध में या तो कड़ुवी तुम्वी का रस मिला लिया, अथवा त्रिफला या त्रिकुटु चूर्ण। अब आप दूध मन्द-मन्द आंच में पकाइये और अब नौ छटांक दूध घट कर आधा सेर हो जावे, तो उतार लीजिये। अच्छी तरह ठण्डा हो जाने पर उसमें १ तोला मिश्री मिला लीजिये। यह पहले दिन का अनुपान है अर्थात् पहिले दिन आप इसी दूध को पीकर रह जावें तथा किसी प्रकार का भोजन न करें और जब कभी आपको प्यास लगे तो फलों का रस (सन्तरा सेव आदि का रस ले लें।

www.44Books.com 

इसी प्रकार दूसरे दिन दूध की मात्रा में ४ छटांक बढ़ती कीजिये कुल (१३ छटांक और तुम्बी के रस को दूध का तीसरा हिस्सा मिला लीजिये ( सवा चार छटाँक ) यदि त्रिफला या त्रिकुट चूर्ण मिलाना चाहें तो रोजाना १-१ माशा बढ़ती कीजिये और ऊपर बताये गये प्रकार से दूध को गरम कर मिश्री मिला लीजिए । यह आपके दूसरे दिन का अनुपान हुआ ।

यही विधि पूरे महीने के लिए है । आप प्रतिदिन दूध की मात्रा में पहिले दिन की अपेक्षा ४ छटाँक की बढ़ती कीजिए और उसमें दूध की कुल मात्रा का तीसरा हिस्सा तुम्बी का रस मिला लीजिये । यदि त्रिफला या त्रिकुट्ट मिलाना हो तो रोजाना १-१ माशा बढ़ाते जाइये ।

इसी प्रकार ६० वें दिन आपके दूध की मात्रा ७ सेर १३ छटाँक तक पहुंच जायेगी । और उसी अनुपात से तुम्बी का रस अनुमानतः ३ सेर ६ छटाँक तक पहुंच जायेगा । यदि आप त्रिफला मिला रहे होंगे तो उसकी मात्रा ३० वें दिन २ तोला ११ माशा हो जायगी और त्रिकुट मिलाने से उसकी मात्रा ३ तोला २ माशा तक पहुंच जाएगी । मिश्री को आप अपनी रुचि के अनुकूल मिला सकते हैं और दूध को गरम करने का तरीका भी हर ६ छटांक में १ छटाँक गरम करने का है, याने ३० वें दिन आपके ७ सेर १३ छटाँक दूध में १४ छटाँक दूध गरम करने पर घटना चाहिए ।

इस अनुपान के काल में ब्रह्मचर्य धारण करना नितान्त अनिवार्य है, परिश्रम करना भी वर्जित है और अत्यन्त जागना भी निषिद्ध है । कम बोलना अधिक लाभ दायक सिद्ध होगा । जैसा कहा जा चुका है कि प्यास लगने पर फलों का रस ही लेना होगा । सन्तरे का रस या मुसम्बी का रस और भी अच्छा है ।

दुग्ध कल्प के गुण क्या होते हैं, सब तो यहाँ पर कहे नहीं जा सकते, परन्तु संक्षेप में यही कहना पर्याप्त होगा कि संक्रामक रोग भी क्यों न हों, इससे हटा दिये जा सकते हैं और गठिया की बीमारी के

www.44Books.com 

लिए इसका विधान अत्यन्त अनुकूल है। भैंस का दूध सदा वर्जित है। दमे की बीमारी, बवासीर और विषपूर्ण रक्त को शुद्धि के लिए यह अचूक उपाय है।

# जड़ी बूटियों के कल्प

दूध, मठा और फलों के कल्प के सिवाय कितनी ही जड़ी बूटियों और विशेष औषधियों के कल्प भी विशेष रोगों के निवारण के लिये किये जाते हैं। इस प्रकार के कल्पों से अनेक असाध्य रोग अच्छे हो जाते हैं।

## निर्गुण्डी-कल्प

निर्गुण्डी ( सम्हालू ) का प्रयोग शक्ति वर्द्धक और अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने वाला माना गया है। आम वात, सूजन, कृमि, प्लीहा, शूल, अरुचि आदि उदर रोगों में इससे विशेष लाभ होता है। खाँसी और श्वास में भी लाभ दायक है। कल्प के लिये निर्गुण्डी की जड़ की छाल निकाल कर उसे छाया में सुखा लें और कूट पीस कर चूर्ण बनालें। एक सेर चूर्ण में एक सेर उत्तम शहद, गाय का घी १ सेर और गाय का दूध ८ सेर मिला कर मिट्टी के चिकने पात्र में भर कर तथा मुख को भली प्रकार कपड़ मिट्टी से बन्द करके अनाज के ढेर में दबा दें या जमीन में गाढ़ दें। एक मास बाद निकाल कर प्रतिदिन २ तोला, तोला भर शहद के साथ सेवन करें तो सब प्रकार के रोग दूर होकर दीर्घायु प्राप्त होती है। (२) निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण १ सेर, शंख पुष्पी आधा सेर, त्रिफला आधा सेर, गोरख मुंडी आधा सेर, भाँगरा आधा सेर, गुरुच का सत्व पाव सेर, नीम का सत आधा पाव, सब को कूट पीस कर छान ले। ६ माशा चूर्ण, ६ माश घी और १ तोला शहद मिला कर नित्य सेवन करने से सब रोगों को दूर करता है।

## चोपचीनी कल्प

चोपचीनी ( चोबचीनी ) चीन और आसाम की तरफ लता के रूप

www.44Books.com 

में पाई जाती है। इसके पत्ते असगंध की पत्तियों से मिलते जुलते हैं। यह सुजाक रोग में विशेष लाभकारी सिद्ध होती है। वात व्याधि, अपस्मार, उन्माद, आदि में भी उपयोगी सिद्ध होती है। इसे विधि पूर्वक सेवन करने से गलित कुष्ठ के समान महाभयानक रोग तक—समूल नष्ट हो जाता है। इसका सेवन करने से एक मास पूर्व नमक खाना छोड़ दे और ब्रह्मचर्य से रहे। अगर नमक सर्वथा न छोड़ा जा सके तो थोड़ी मात्रा में सेंधे नमक का व्यवहार करे।

चोबचीनी का साफ छना हुआ चूर्ण ३ माशा, शहद १ तोला, गाय का घी ६ माशा मिला के प्रातः काल बिना कुछ खाये चाट ले। ऊपर से चोबचीनी का क्वाथ ५ तोला पी जावे। क्वाथ के लिये ६ माशा चोबचीनी को २ सेर पानी में मुख बन्द करके औटावे। जब चौथाई पानी रह जाय तब छान ले। यही क्वाथ है। अगर चाहे तो इसमें थोड़ी सी मिश्री भी मिला सकते हैं। बाकी बचे क्वाथ से कुल्ला करने और वस्त्र आदि पोंछने का काम ले।

चोब चीनी की वाष्प विधि—चोब चीनी का दरदरा चूर्ण पाँच तोला और निर्गुण्डी के पत्ते ५ तोला लेकर एक हाँडी में ५ सेर पानी डाल कर धीमी आग से पकावे। जब भाप तैयार हो जाय तब रोगी को नंगा करके बेत की आराम कुर्सी या खाट पर लिटा दे और कम्बल तथा चद्दर से इस प्रकार ढक दे कि जिससे भाप बाहर न निकल सके। अब भाफ का बर्तन नीचे रख कर भाफ धीरे-धीरे इस प्रकार निकाले जिससे वह कम्बल से बाहर न जाकर रोगी के तमाम बदन में लगे और पसीना लावे। जब भाफ निकलना बन्द हो जाय, तब वस्त्र से पसीने को पोंछ डाले, पर बदन ढका ही रखे, जिससे शीतल वायु न लगने पावे। इस प्रकार की भाफ सप्ताह में एक बार या दो बार भी दे सकते है।

चोबचीनी के सेवन काल में शीतल जल का प्रयोग भूल कर भी नहीं करना चाहिये। दो तोला चोबचीनी का जौकुट चूर्ण करके १० सेर

www.44Books.com 

पानी में ६ घन्टे तक भिगोवें। बाद में बर्तन का मुँह बन्द करके आग पर पका ले। अब आधा पानी शेष रह जाय तब उतार कर छान लें। इसी जल को गरमी में ठण्डा करके और जाड़े में गरम ही पियें। सब कार्यों में इसी का व्यवहार करें! अगर स्नान की आवश्यकता हो तो इसी पानी में तौलिया भिगो कर पोंछ डालें। भोजन में गेहूँ चने की मोमन डाली रोटी, घी, दूध, साबूदाना, धान का लावा, मुनक्का आदि व्यवहार करना चाहिये। अंकुरदार चना भी नित्य सेवन करें। इस प्रकार ८० दिन तक संयम से रहने पर कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।

## सुधा (थूहर) कल्प

थूहर का पौदा भारतवर्ष के सभी स्थानों में मिलता है। इसमें बहुत तेज काँटे होते हैं और तोड़ने से दूध निकलता है। औषधि के काम में प्रायः थूहर के दूध का ही प्रयोग किया जाता है।

(१) पीपल, छोटी हर्र, निसोथ इनको सम भाग लेकर कपड़-छन करलें और थूहर के दूध की भावना दें। सूखने पर शीशी में भर लें। एक माशा से तीन माशा तक की मात्रा देने से तीव्र विरेचन होकर जलोदर, सूजन व अफारा में लाभ पहुंचता है।

(२) थूहर की जड़ एक तोला तथा काली मिर्च ६ माशा महीन पीस कर बकरी के दूध के साथ पिलाने से साँप के काटे को आराम होता है। काटे हुए स्थान पर भी यही औषधि लगानी चाहिये।

(३) आक का दूध, थूहर का दूध, कड़वी तुम्बी, करंज की मिङ्गी—इनको समान भाग लेकर थूहर के पत्तों के रस में घोट कर अर्श के मस्सों पर लगाने से आराम होता है।

(४) थूहर के डण्डे का गूदा १ माशा, अदरक का रस २ माशा—इन दोनों को मिला कर दिन में दो बार देने से तथा थूहर के दूध में लाल मिर्च घोट कर काटने के स्थान पर लगाने से पागल से पागल कुत्ते का विष निश्चय ही उतर जाता है।

(५) थूहर के पत्तों का रस १ सेर, काला नमक आधा सेर, एक

www.44Books.com 

हँडिया में डाल कर पकावें। नमक मात्र शेष रहने पर शीशी में रख लें। इस नमक को अदरक के रस के साथ देने से खाँसी दूर हो जाती है।

(६) थूहर को जला कर उसका क्षार बना लें। इस क्षार की ४ रत्ती की मात्रा दशमूल क्वाथ के साथ लेने से दमा में लाभ होता है।

(७) थूहर की डालियों को औटा कर तथा रस निकाल कर १ माशा की मात्रा में दिन में तीन बार पिलाने से तथा इसी रस की दर्द के स्थान पर मालिश करने से जोड़ों का दर्द नष्ट होता है।

## चित्रक-कल्प

चित्रक मूल का महीन चूर्ण मात्रा २ रत्ती से ८ रत्ती तक, गौ की छाछ ( तक्र ) के साथ १ महीना सेवन करने से शरीर सर्व रोग रहित तथा कामदेव के समान सुन्दर होता है। इसी चूर्ण को यदि गौदुग्ध के साथ १ महीना सेवन किया जाय तो शरीर वज्र जैसा कड़ा एवं बल पराक्रम में पूर्ण होता है। चित्रक को कार्तिक या मार्गशीर्ष मास में शुद्धता पूर्वक लाना चाहिये, यह बल को बहुत बढ़ाने वाला होता है। दो महीने सेवन करने से शरीर दृढ़ होता तथा जितेन्द्रियता प्राप्त होती है।

योगरत्नावली में लिखा है चित्रक का पंचांग छाया शुष्क कर महीन चूर्ण ( मात्रा उपर्युक्तानुसार ) कर, सोंठ, काली मिर्च और छोटी पीपल ( की सम्मिलित मात्रा १ माशा तक ) का चूर्ण मिला, समभाग घृत तथा शहद के साथ ( यह एक मात्रा है ) सेवन करें। छः महीने तक सेवन करने से बुढ़ापे के लक्षण दूर होते हैं और पांडु, अपस्मार, जलोदर, भगंदर सर्व प्रकार के मेह तथा कुष्ठ मिटते हैं।

चित्रक का सेवन ( उचित मात्रा में ) गौमूत्र के साथ, एक माह प्रयोग करने से मनुष्य रोग मुक्त और रूपवान होता है। शहद के साथ एक महीना सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान, सत्यवादी, प्रियदर्शन और बुढ़ापा रहित होकर १०० वर्ष जीता है।

www.44Books.com


एक दिन उपवास करके ईश्वर की पूजा कर, लाल वस्त्र पहन, लाल चन्दन लगा, मौन रहकर, कृष्ण पक्ष की पंचमी, अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन चन्द्रबल और ताराबल देख कर "ॐ छिन्धिछिन्धि चित्राय स्वाहा" इस मन्त्र से गन्ध पुष्पादि लगा, बली देवे फिर यह मन्त्र "ॐ सत्यवती क्षिषु महोषधे माचलः समय हुँ फट् स्वाहा" पढ़ कर जड़ सहित चित्रक का पौदा उखाड़, छाया शुष्क करे, और त्रिकुटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ) के चूर्ण के साथ घृत और शहद मिला उपर्युक्त मात्रा में सेवन करे ( ग्रन्थ में १ तोला की मात्रा कही गई है ) ७ दिन इस तरह सेवन करने तथा दूध पीकर रहने से मनुष्य बुढ़ापे से बचता, जितेन्द्रिय होता और विशेष दीर्घायु होता है। एक वर्ष तक इसी प्रकार सेवन करने से गुणों की अत्यधिक वृद्धि होती है।

नोट—चित्रक कटु होने से कफ नाशक, तिक्त ( पाक में तिक्त ) होने के कारण पित्त नाशक और उष्ण वीर्य होने से वात नाशक है। अतएव इसे ( कल्प-विधि से ) सेवन करने से वातज, पित्तज और कफज समस्त रोग नष्ट होते हैं। कहा है—

'कटुकत्वात्कफं हन्ति तिक्तत्वात्पित्त नाशनः।
औष्ण्याद्धन्त्यनिलं चापि चित्रकः सर्व रोगहा ॥'

—गद-निग्रह।

## वृद्ध दारुक (विधारा) कल्प

(१) विधारे की जड़ वसन्त में उखाड़, धूप में सुखा, सूक्ष्म चूर्ण कर, उसे घृत से तर करके घृत पात्र में भर तथा मुख बन्द करके अनाज के ढेर में दबा दें। १५ दिन पश्चात् निकाल कर सेवन करें। मात्रा ६ माशे से १ तोला तक खाकर, ऊपर से गौदुग्ध पीवें। पच जाने पर घृत युक्त, दूध भात खावें। इस प्रयोग से बुढ़ापे से जर्जरित वृद्ध भी तरुण के समान हो जाते हैं, और बालकों की कुरूपता दूर होकर उनका स्वर सुधर जाता है, टूटी हुई अस्थि जुड़ जाती है। तथा

www.44Books.com 

रक्तदोष, नखभेदादि उपद्रव, अपस्मार, ग्रह, उन्माद और कान्तिहीनता आदि का नाश एवं अग्नि बल और वाणी की वृद्धि होकर १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है ।

(२) विधारा और असगन्ध समभाग चूर्ण को एकत्र मिला, यथोचित मात्रानुसार ( कल्प-विधि से ) दूध या घी के साथ सेवन और घी दूध का आहार करे अत्यन्त बलशाली एवं स्वरूप, कान्तिवान होकर चिरायु होता है ।

(३) विधारा मूल का महीन चूर्ण कर, उसमें सतावर के रस की सात बार भावनायें देकर छाया शुष्क तथा बारीक पीस कर रखें । इसकी १ माशे से ४ माशे तक की मात्रा गौ घृत में मिला १ मास तक सेवन करें तो मनुष्य बुद्धिमान, मेधावी तथा तीव्र स्मरणशक्ति वाला होता और बली-पलित आदि विकारों से मुक्त हो जाता है । कहा है—

वृद्धदारुक मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शतावर्या रसेनै व सप्तरात्राणि भावयेत् ॥
अक्षमात्रन्तु तच्चूर्ण सर्पिषासहभोजयेत् ।
मासम त्रो ियोगेन मतिमान जायतेनरः ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव बलीपलित वर्जितः ॥

## लाँगली कल्प

शुद्ध कलिहारी, आमला, हरड़, बहेड़ा और कांतिसार, लोह भस्म, प्रत्येक १०-१० पल लेकर एकत्र महीन चूर्ण बना, भांगरे के स्वरस में खरल कर उसकी ३६० गोलियाँ बना छाया शुष्क कर सुरक्षित रखें । एक वर्ष तक नियम-पूर्वक सेवन करें तो रक्तशुद्धि हो, नये रक्त एवं बल की शुद्धि होती है तथा सम्पूर्ण असाध्य रोग जैसे कुष्ट, रक्त विकार, अर्श आदि नष्ट होते हैं । प्रथम वमन विरेचनादि से शुद्ध हो, मण्डपेयादि यथाशक्ति सेवन करें, जितेन्द्रिय हो, घृत आदि स्निग्ध अन्न-युक्त भोजन १ मास करे, फिर यथेष्ट भोजन करता रहे, किन्तु अजीर्ण सर्वथा न होने

www.44Books.com


दे। इस प्रकार १ वर्ष में ३६० गोली सेवन करने से रोगी हमेशा के लिए निरोग हो जाता है। तथा दीर्घ आयु होता है।

## भृंगराज कल्प

पुष्य योग में भाँगरे की जड़ लाकर, उसको धूप में सुखा कर, नित्य १ तोला की मात्रा में काँजी के साथ सेवन करने से रोग नहीं होते, तेल के साथ सेवन करने से बुढ़ापा नहीं आता। एक महीना ( इस प्रकार ) प्रयोग करने से सब रोग नष्ट होते हैं इस रसायन के सेवन काल में पेठा, करेला, धनियाँ और राई नहीं खाना चाहिये। भांगरा रस की भावना दिया हुआ त्रिफला चूर्ण १॥ महीना सेवन करने से देह में झुर्रियाँ और श्वेत बाल नहीं होने पाते, मकोय और भांगरे के रस की भावना दिया हुआ त्रिफला चूर्ण १२ दिन सेवन करने से भी वही फल होता है।

अथवा:—

भांगरे के सूक्ष्म बीजों को ( किसी उत्तम स्थान में ) बोकर त्रिफला के क्वाथ से सींचे। इससे जो अत्यन्त कोमल भांगरा के पौधे उत्पन्न होंगे, उनके कोमल-कोमल पत्ते प्रतिदिन प्रातःकाल तिलों के साथ मिलाकर चबावें और ऊपर से संभालु का स्वरस ताजा निकाला हुआ लगभग दो चुल्लू भर पीवें। पश्चात सुपारी और इलायची आदि सुगन्धित पदार्थ युक्त ताम्बूल खालें इस भांगरा कल्प के सेवन के ६ घण्टे पश्चात्, दूध, भात, खांड, मूँग और घृत-युक्त भोजन करें। इनके अतिरिक्त अन्य कोई चीज न खावें। इस प्रकार कल्प-विधि से ६ मास तक सेवन करने से वृद्ध मनुष्य के बाल भी कोमल और निर्मल हो जाते हैं। दांत दृढ़ हो जाते हैं तथा शरीर नवीन, अत्यन्त कान्तिमय, देवतुल्य हो जाता है।

इन कल्पों के अतिरिक्त—(१) गन्धक कल्प (२) श्वेतार्क कल्प (३) शाल्मली कल्प ( सौन्दर्य व दीर्घ जीवन के लिये ) (४) पलाश कल्प

www.44Books.com


(५) अश्वगन्धा कल्प (६) पिप्पली कल्प (७) मुसली कल्प (८) मण्डूक ब्राह्मी कल्प (९) अमलताश कल्प आदि का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार तथा आयुष्य संवर्धन के लिए किया जाता है। यह विधान अपेक्षाकृत कठिन होते हैं इसलिये जिज्ञासु प्रयोग कर्त्ताओं को प्रारम्भ में दिये हलके कल्प ही करने चाहिये। औषधीय कल्प किसी योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक की देख रेख में ही किये जाने चाहिये

कल्प चिकित्सा भारतवर्ष की एक विशिष्ट देन है। इस लुप्त प्राय विद्या को फिर से जीवित और प्रयुक्त किया जा सका तो चिकित्सा जगत को एक नई चेतना और प्रकाश मिल सकता है।

युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

www.44Books.com

# युग-निर्माण पुस्तक-माला

विचार-क्रान्ति—अभियान के अन्तर्गत हमारे यहां अध्यात्म, धर्मतत्व, निष्काम साधना, नव-निर्माण से सम्बन्धित तथा सौ पुस्तकों की एक अनुपम सीरीज प्रकाशित की जा रही है जिसका प्रत्येक पुष्प सद्‌विचार, सत्प्रेरणा और सत्कर्मों का स्फुरण करने वाला है। इन ग्रन्थों में आपको भारतीय आदर्शों के अनुकूल मार्ग-दर्शन के साथ ही भारतवर्ष तथा अन्य देशों के भी उन सैकड़ों नवीन और प्राचीन महामानवों के चरित्र और प्रेरणादायक घटनायें भी मिलेंगी जिन्होंने अन्याय, अत्याचार, दैन्य-दारिद्रय से पीड़ित मानवता के लिये अपने तन-मन-धन को उत्सर्ग कर दिया। "मानवता जिनकी ऋणी है"—"पीड़ित मानवता के अनन्य सेवक"—कर्तव्य धर्म की आख्यायिकाएं"—"आत्मोत्कर्ष की गौरव गाथाएं"—"ज्ञान—क्रान्ति के अग्रदूत" आदि कुछ नाम ही इस पुस्तक—माला की उत्कृष्टता को प्रतीत करा देने के लिये पर्याप्त हैं। सभी पुस्तकें मोटे बढ़िया कागज पर सुन्दर छपी और तैयार की गई हैं और प्रत्येक में १६० पृष्ठ हैं। मूल्य २) दो रुपया प्रति पुस्तक।

पत्र व्यवहार का पता—

युग-निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा (उ. प्र.)

www.44Books.com

# : युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता :** विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार :** जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक :** मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार :** जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता :** जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्‌घोषक :** जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी :** जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक :** जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी :** जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक :** जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक :** जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक :** जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना :** जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

**गायत्री परिवार** जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।

**Free Download Complete Work Of Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya, Founder of All World Gayatri Pariwar Books, Magazines, Articles, Stories, Poems, Great Personalities and many more at**

**www.vicharkrantibooks.org | www.awgp.org**